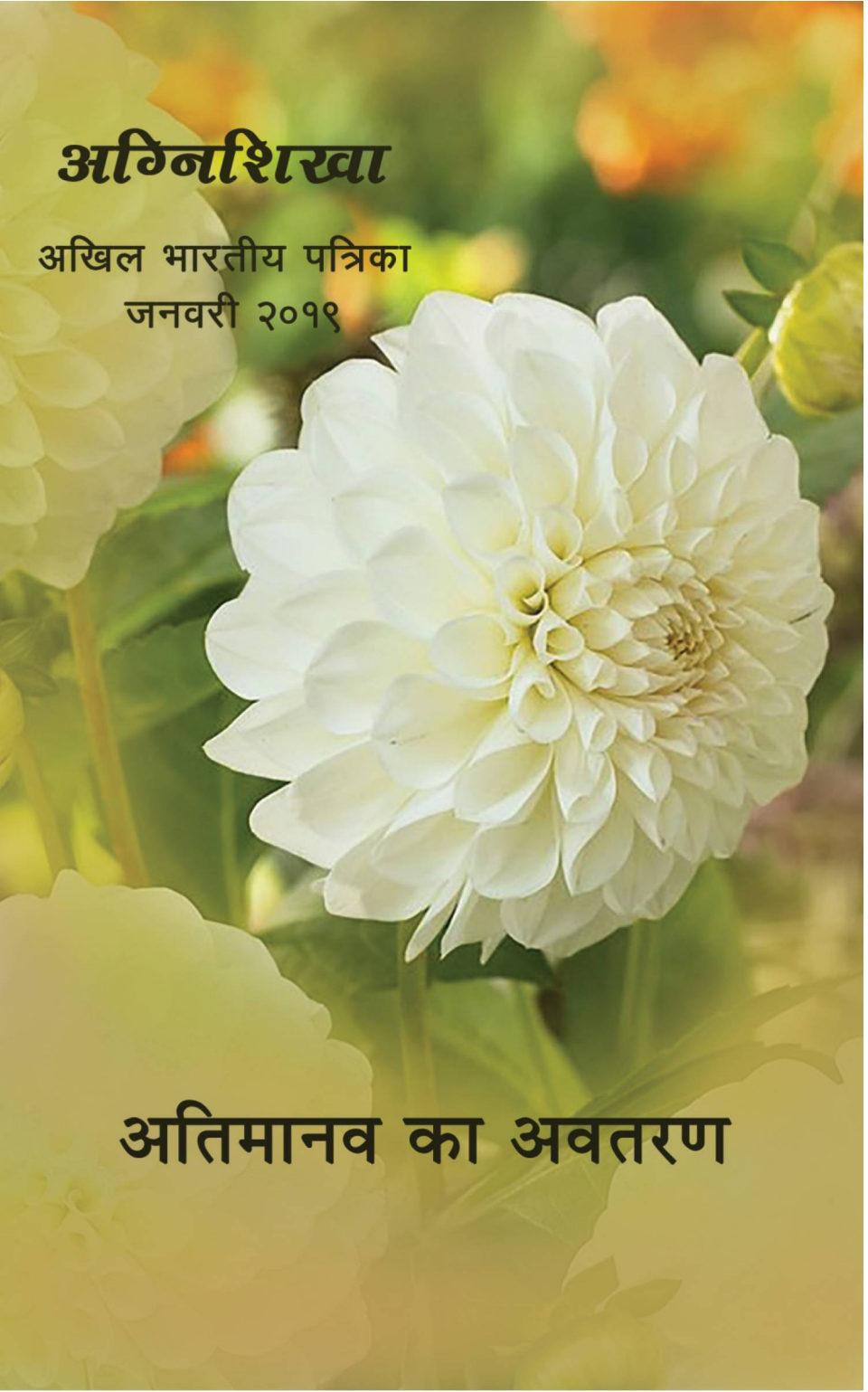

अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका
जनवरी २०१९

अतिमानव का अवतरण

विषय-सूची

अतिमानव का अवतरण

(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)

सन्देश/सम्पादकीय	४
अतिमानव का विचार	५
अतिमानव का प्रादुर्भाव	१०
नयी जाति	१४
मानव और अतिमानव	२१
अतिमानव की चेतना का अवतरण	३०

'पुरोधा'

दैनन्दिनी		३२
'श्रीअरविन्द का पूर्णयोग' : ज्योति का पुण्यधाम,	श्री नारायण प्रसाद 'बिन्दु'	३५
"मेरी नन्हीं मुस्कान" के नाम पत्र	'श्रीमातृवाणी' से	३९
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : मानवजाति के आदर्श के लिए कर्म करना	नवजात जी	४३
'योग के तत्त्व' : अभीप्सा	श्रीअरविन्द	४५
मिट्टी की देह में (कविता)	डॉ. सुमन कोचर	५१
दृष्टि की शून्यता	शक्ति शर्मा	५२
वे पाँच दिन	वन्दना	५३
प्रेम ही प्रार्थना	'मधु-सञ्चय' से	५७

मुखपृष्ठ के पुष्प का श्रीमां द्वारा दिया गया आध्यात्मिक अर्थ :

परा-मानवता (डालिया)

हमारी अभीप्साओं का लक्ष्य

Bonne Année

blessings

सन्देश

तुम जो कुछ कह रहे हो वह बिलकुल सही है। हृदय से उठने वाली सरल, सीधी और सच्ची पुकार तथा अभीप्सा एकमात्र प्रधान वस्तु हैं तथा अन्य क्षमताओं की अपेक्षा कहीं अधिक आवश्यक और प्रभावशाली होती हैं। फिर चेतना को अन्दर की ओर मोड़ देना, उसे बहिर्मुखी न बने रहने देना—आन्तरिक पुकार, आन्तरिक अनुभव, आन्तरिक उपस्थिति के पास पहुँचना बहुत महत्त्वपूर्ण है।

जो सहायता तुम माँगते हो वह तुम्हें प्राप्त होगी। अभीप्सा को बढ़ने दो और आन्तरिक चेतना को पूरी तरह से खुल जाने दो।

—श्रीअरविन्द

सम्पादकीय : श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ ने उस अगले क्रमविकासात्मक चरण के बारे में बतलाया है जिसे मानवजाति को लेना है—वह है अतिमानस। वर्तमान पशु-मानवता तथा भावी दिव्य-मानवता के बीच की खाई इतनी बड़ी है कि वह एक छलाँग में नापी नहीं जा सकती। इसी कारण उन्होंने देखा कि अतिमानस का अवतरण वह बीच की कड़ी है जो मानव और अतिमानसिक सत्ता के बीच पुल का काम देगी। जहाँ अतिमानसिक सत्ता अभी दूर की चीज़ लग रही है, लेकिन है अवश्यम्भावी, वहाँ अतिमानस यहाँ मानव शरीरों तथा व्यक्तित्वों में उतर कर उन्हें हितैषी परामर्शदाता तथा पथ-प्रदर्शक के रूप में तैयार कर रहा है। श्रीमाँ ने अतिमानव के अवतरण की पुष्टि जनवरी १९६९ में की थी। (देखें पृ. ३१) यह एक युगान्तरकारी घटना है, सम्भवतः, मानव तथा अतिमानसिक सृष्टि को जोड़ने वाली कड़ी है। इस अवतरण की ५०वीं जयन्ती पर हमारा यह अंक अतिमानसिक योग को समर्पित है।

अतिमानव का विचार

योग का मौलिक उद्देश्य

हमारी सत्ता तथा समस्त सत्ता का भागवत सत्य के साथ ऐक्य ही योग का मौलिक उद्देश्य है। मन में इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है; हमें यह याद रखना चाहिये कि हमारा योग स्वयं अतिमानस को प्राप्त करने के लिए नहीं किया जाता बल्कि भगवान् के लिए किया जाता है; हम अतिमानस की खोज इसके अपने आनन्द तथा इसकी महानता के लिए नहीं करते बल्कि भगवान् के साथ ऐक्य को निरपेक्ष तथा सम्पूर्ण बनाने के लिए, अपनी सत्ता के हर सम्भव तरीक़े से, इसकी उच्चतम तीव्रताओं तथा बृहत्तम विशालताओं में तथा हमारी अपनी प्रकृति की प्रत्येक पहुँच में, घुमाव में, प्रत्येक कोने और कोटरिका में इसे महसूस करने, अधिकृत करने तथा गतिशील बनाने के लिए करते हैं। यह सोचना भूल है, जैसा कि बहुत-से लोगों में ऐसा सोचने की प्रवृत्ति है, कि अतिमानसिक योग का उद्देश्य अतिमानवता की शक्तिशाली भव्यता, एक भागवत शक्ति और महानता, एक बढ़े-चढ़े वैयक्तिक व्यक्तित्व की आत्म-परिपूर्णता को पाना है। यह एक मिथ्या तथा अनर्थकारी धारणा है—अनर्थकारी क्योंकि यह हमारे राजसिक-प्राणिक मन के अहंकार, मिथ्याभिमान तथा महत्त्वाकांक्षा को बढ़ा सकती है और यह भी कि यदि इसे पार और पराजित नहीं किया गया तो यह आध्यात्मिक पतन की ओर ले जायेगी, मिथ्या क्योंकि यह एक अहंकारिक धारणा है, तथा अतिमानसिक परिवर्तन की पहली शर्त है—अहंकार से मुक्त होना।

CWSA खण्ड २३, पृ. २८०

शाश्वत में रहने का अर्थ हमारे अन्दर के शाश्वत के साथ रहना भी है। जो भी सचेतन रूप से उनकी सत्ता को अपने अन्दर धारण करता है उनकी सचेतन उपस्थिति उसमें निवास करती है। भगवान् तभी हमारे अन्दर रहते हैं, गति करते हैं तथा कार्य करते हैं जब हम उनके अन्दर रहते, गति करते तथा कार्य करते हैं।

CWSA खण्ड १२, पृ. ३३३

धरती के लिए तैयारी

कोई भी व्यक्तिगत एकाकी रूपान्तर, यानी, बस व्यक्ति रूपान्तरित हो जाये, न सम्भव है न ही उपयोगी। साथ ही, कोई भी व्यक्तिगत मानव सत्ता, केवल अपनी ही शक्ति का प्रयोग करके, रूपान्तर का कार्य सम्पन्न नहीं कर सकती, न ही हमारे योग का यह उद्देश्य है कि हम इधर-उधर बस कुछ वैयक्तिक अतिमानव खड़े कर दें। हमारे योग का उद्देश्य है, अतिमानसिक चेतना को धरती पर उतारना, उसे यहाँ प्रतिष्ठापित करना, अतिमानसिक चेतना के सिद्धान्त पर एक नयी जाति की सृष्टि करना जो व्यक्ति के आन्तरिक तथा बाह्य जीवन के साथ-साथ सामूहिक जीवन पर भी शासन करे। इसी कारण आश्रम का होना आवश्यक था—भले यहाँ हमें व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से चाहे जितनी भी समस्याओं का सामना क्यों न करना पड़े। पार्थिव चेतना को, यानी मानव सत्ताओं को—जिनके प्रतिनिधि-रूप आश्रम के सदस्य तथा अन्य हैं—(सामान्य पार्थिव चेतना पर भी कार्य करना है) तैयार करना ही उद्देश्य है ताकि अतिमानसिक 'शक्ति' का अवतरण सम्भव हो सके। CWSA खण्ड २८, पृ. २९६

अतिमानवता की दो धाराएँ

गूढ़ ज्ञानवादियों के जीवन को, जो उच्चतर अतिमानसिक स्तर तक विकास को आगे बढ़ाते हैं, उचित ही दिव्य जीवन के समान माना जा सकता है, क्योंकि यह भगवान् की चेतना से युक्त जीवन होगा, एक ऐसा जीवन होगा जो भौतिक प्रकृति में अभिव्यक्त आध्यात्मिक दिव्य प्रकाश, शक्ति, आनन्द का एक प्रारम्भिक रूप हो। क्योंकि इस प्रकार का जीवन मानसिक मानवीय स्तर का अतिक्रमण कर लेता है इसलिए इसे आध्यात्मिक तथा अतिमानसिक अतिमानवता का जीवन कहा जा सकता है। परन्तु अतिमानवता-सम्बन्धी भूतकाल तथा वर्तमान काल की धारणाओं के साथ इसे उलझाना नहीं चाहिये, क्योंकि मानसिक विचार से अतिमानवता का अर्थ ही है सामान्य मानव स्तर से ऊँचा होना, परन्तु अपने प्रकार में नहीं बल्कि प्रकार की मात्रा में। यानी, एक विशाल व्यक्तित्व, आवर्धित तथा अतिरञ्जित अहंकार, मन-प्राण की संवर्धित शक्ति, मानवीय अज्ञान की शक्तियों की परिष्कृत या व्यापक अतिरञ्जना। इसमें सामान्य रूप से यह विचार भी

छिपा रहता है कि अतिमानव का मानव पर बलपूर्वक नियन्त्रण रहेगा। इसका अर्थ होगा—नीत्शे की अतिमानवता जिसे 'ब्लाँद बीस्ट' अथवा 'ब्लैक बीस्ट' यानी काला बर्बर अथवा कोई या हर पशु, बर्बर शक्ति, निर्दयता तथा बल की वापसी कहा जा सकता है। **किन्तु यह क्रमविकास नहीं है**। यह पुरानी कठोर बर्बरता का पुनरागमन है। अथवा यह मानवता के आत्म-अतिक्रमण के लिए व्यग्र प्रयास के कारण राक्षस अथवा असुर के आविर्भाव की ओर संकेत है, किन्तु ग़लत दिशा में। एक हिंसक तथा प्रचण्ड अतिरञ्जित प्राणिक अहंकार, जो आत्मपूर्ति की सर्वोच्च निरंकुश या अराजक शक्ति के द्वारा स्वयं को तुष्ट करता हो, वह राक्षसी अतिमानवता का ही प्ररूप होगा, परन्तु होगा वह दैत्य, पिशाच अथवा विश्व का भक्षक, राक्षस, जो वैसे तो अभी भी टिका हुआ है लेकिन भावना और विचारधारा में अतीत की चीज़ है। उस प्ररूप का बड़े पैमाने पर आविर्भाव भी एक अधोगामी अथवा उलटा क्रमविकास होगा। अभिभूत करने वाली शक्ति का प्रबल प्रदर्शन, आत्मनिष्ठ, स्थिर, यहाँ तक कि वैराग्यपूर्ण आत्मसंयम से युक्त मानसिक तथा प्राणिक सामर्थ्य, बलशाली, प्रशान्त या तटस्थ अथवा दृढ़ उत्कटता में भयानक, सूक्ष्म, प्रभावकारी, मानसिक तथा साथ ही प्राणिक अहंकार का परिष्कार—यह सब असुर का ही प्ररूप है, यह अतिमानव कतई नहीं है...

CWSA खण्ड २२, पृ. ११०४-०५

मानव क्रमविकास की दिशाएँ : देवगण तथा असुर

देव और असुर अपने विभेदों में सचमुच घनिष्ठ रूप से सम्बन्ध रखते हैं और दोनों ही क्रमविकास के परिणाम हैं। फिर भी, ये अपने स्वभाव में समान अस्तित्व तथा समान प्रकृति के दो विपरीत छोर हैं। एक प्रकाश तथा असीमता से नीचे अवतरित होता है, सन्तुष्ट, लीला के लिए। दूसरा अन्धकार तथा धुँधलेपन से ऊपर उठता है, क्रुद्ध, संघर्ष के लिए। भगवान् के सारे कार्य वैश्व चेतना से उद्‌भूत होते हैं और वैश्व की ओर ही अग्रसर होते हैं। एक विजेता सामञ्जस्य से उसका जन्म हुआ। उसके सद्‌गुण शुद्ध तथा शिष्ट लोगों से मिल कर उन्हें स्वाभाविक रूप से और आनन्द के साथ परस्पर मिलाते हैं जैसा कि वृन्दावन की गोप-मण्डली में भगवान्

कृष्ण ने इसके पूर्ण परिवेश को प्रभुत्व के साथ एक साथ मिला कर रखा। भगवान् के बोध में विकास करना अन्तर्भास में, प्रकाश में, आनन्द में, प्रेम में, प्रसन्नतापूर्ण स्वामित्व में समृद्ध होना है, शासन के द्वारा सेवा और सेवा के द्वारा शासन करना है। साहसी, तीव्र, यहाँ तक कि बिना दुःख दिये या बिना दुष्टता के प्रचण्ड होना, सौम्य, दयालु होना, यहाँ तक कि बिना शिथिलता या दुर्बलता के भोगासक्त होना है, स्वयं अपने में सम्पूर्ण मानवता तथा समस्त प्राणी-जगत् के साथ सहानुभूति द्वारा एक देदीप्यमान पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करना है। और अन्ततः एक विशाल निर्वैयक्तिक व्यक्तित्व में विकसित होना तथा वैश्व एकता की सतत अनुभूति में सहानुभूति को पराकाष्ठा तक उठाना है। क्योंकि देवगण इसी प्रकार के होते हैं, हमेशा अपनी विश्वव्यापकता के प्रति सचेतन और इसीलिए दिव्य भी।

दिव्य मानव

निश्चय ही इसमें शक्ति समाविष्ट है। दिव्य मानव बनने का अर्थ है स्वराट् तथा सम्राट् बनना; किन्तु बाह्य अर्थ की अपेक्षा एक अन्य अर्थ में। यह एक ऐसा शासन है जो प्रच्छन्न सहानुभूति तथा एकता पर निर्भर करता है। यह एकता दूसरे व्यक्ति की सत्ता तथा विश्व की सत्ता के विधान को जानती है और उसे अपनी उच्चतम सम्भावनाओं को सिद्ध करने में मदद करती या ज़रूरत हुई तो उसे बाध्य करती है, किन्तु एक भागवत तथा तत्त्वतः आन्तरिक बाध्यता के द्वारा। यह है हमारे अपने परिवेश के संसार को—समस्त गुणों, ऊर्जाओं, हर्ष, शोक, विचारों, ज्ञान, आशाओं, लक्ष्यों को अपने अन्दर ग्रहण कर लेना और एक उत्कृष्ट व्यापार तथा उपयोग के हित उन्हें अधिक समृद्ध बना कर तथा रूपान्तरित कर वापस कर देना। ऐसे साम्राज्य में अश्लील दिखावे तथा सुनहली सजावट की माँग नहीं की जाती। देवगण प्रायः ही प्रकाश के परदे के पीछे से कार्य करते हैं। वे लोगों के बीच चरवाहे या कारीगर के वेश में भी रहने में लज्जित अनुभव नहीं करते। वे अपने आन्तरिक क्रमविकास या अपनी बाहरी सफलताओं में सलीब और काँटों के ताज से डरते नहीं। क्योंकि वे जानते हैं कि अहंकार का बलिदान करना ही होगा और मनुष्य कैसे इसकी सहमति देंगे यदि भगवान् और देवगण उन्हें मार्ग नहीं दिखायें? मनुष्य में जो

कुछ आवश्यक है उस सबको लेकर उसे चरम सीमा तक उठाना जिससे यह अपने और दूसरों के लिए प्रकाश, आनन्द, शक्ति का एक तत्त्व बन जाये—यह है दिव्यता। इसे भी अतिमानवता का अभिप्राय होना चाहिये। CWSA खण्ड १३, पृ. १५२-५३

'वही' सब कुछ है

हम अभी जो कुछ हैं या अपनी सतही सत्ता में जो हैं उससे ज़्यादा बड़ी सत्ता और चेतना, जिस तक हम अपने-आपको किन्हीं साधनों से चढ़ा सकते हैं, जिसके अन्दर प्रवेश कर सकते हैं या वही बन सकते हैं—यह समस्त योग का आधार तत्त्व है। यह महत्तर चेतना और सत्ता क्या है? यह कोई ऐसी चीज़ या ऐसा व्यक्ति है जो शाश्वत और अनन्त है, जो निरपेक्ष और पूर्ण है, जिसमें सब कुछ समाया है, जिसमें से सब कुछ आता और जिसमें सब कुछ लौट जाता है और जो सभी चीज़ों की गुप्त आत्मा है, सब कुछ उसी की सत्ता से मौजूद है, सब कुछ उसी की चेतना से सचेतन है, उसी की सत्ता के आनन्द से बना रहता है, उसी के मन से सोचता है, उसी के जीवन से जीता है और विश्व में उसी की ऊर्जा का एक रूप है। लेकिन फिर भी हम जो जीवन जीते हैं, जिस चेतना का उपयोग करते हैं, हम जिस उच्चतर आनन्द का अनुभव करते हैं, हमारा मन, हमारा प्राण, हमारा शरीर, हमारी शक्ति उसी की या उसी में एक आंशिक घटना है। वह शाश्वत ही सर्व है, पूर्ण है, हमारी महत्तर आत्मा है, हमारी पूर्णता और हमारा विश्व है लेकिन वह किसी भी विश्व से बढ़ कर है, अगर कोई भी विश्व न होता तब भी वह होता। यह अनन्त और शाश्वत केवल अन्तहीन काल और देश का अनन्त नहीं है। उसकी शाश्वतता केवल अन्तहीन वर्षों और युगों की प्रगति में ही नहीं बल्कि काल के एक क्षण में भी अनुभव की जा सकती है। उसकी अनन्तता केवल देश के सीमाहीन विस्तार में ही नहीं है, जिसमें हम कोई अन्त या सीमा निर्धारित नहीं कर सकते बल्कि अणु के भी अत्यणु में वह पायी जाती है। लेकिन क्षण और अनन्त युगों की शाश्वतता के भी परे शाश्वतता कालहीन है और विस्तृत अनन्त और अत्यणु के भी परे अनन्त की अनन्तता देशहीन है।

—*'मानव से अतिमानव की ओर'*, पुस्तक से, पृ. ७

अतिमानव का प्रादुर्भाव

मनुष्य अन्तर्वर्ती सत्ता है

मनुष्य अन्तर्वर्ती सत्ता है। वह अन्तिम नहीं है क्योंकि उसमें और उसके परे वे ज्योतिर्मय सोपान उठते हैं जो दिव्य अतिमानवता तक आरोहण करते हैं। धरती के क्रमविकास में मानव से अतिमानव की ओर क़दम ही आने वाली उपलब्धि है। यही हमारी नियति है और हमारी अभीप्सा करने वाली परन्तु मुश्किल में पड़ी सीमित सत्ता को मुक्त करने वाली चाबी है। यह अनिवार्य है, क्योंकि यह एक ही साथ आन्तरिक आत्मा का अभिप्राय और प्रकृति की प्रक्रिया का तर्क है।

भौतिक और पाशविक जगत् में मानव सम्भावना का आविर्भाव आने वाले दिव्य प्रकाश की पहली झलक, भौतिक तत्त्व में से जन्म लेने वाले देव की प्रथम दूरागत सूचना थी। मानव जगत् में अतिमानव का आविर्भाव होगा—उस दूरस्थ प्रकाशमय प्रतिज्ञा की परिपूर्णता।

मानव और अतिमानव के बीच वही भेद होगा जो मानव मन और उस चेतना के बीच होगा जो उससे उतनी ही परे है जितना चिन्तनशील मन वनस्पति और पशु की चेतना से परे है। मानव का भेद करने वाला तत्त्व है मन, और अतिमानव का भेद करने वाला तत्त्व होगा अतिमन या भागवत विज्ञान। मनुष्य बन्दी मन है जो अस्थिर और अपूर्ण जीवन में अपूर्ण रूप से सचेतन शरीर में छिपा और घिरा हुआ है। अतिमानव अतिमानसिक आत्मा होगा जो सचेतन और आध्यात्मिक शक्तियों के प्रति नमनीय और सचेतन शरीर को आवेष्टित करेगा और खुल कर उसका उपयोग करेगा। उसका शारीरिक ढाँचा जड़-भौतिक में आत्मा की दिव्य लीला और उसके कार्य के लिए दृढ़ सहारा और पर्याप्त ज्योतिर्मय उपकरण होगा।

—'मानव से अतिमानव की ओर', पुस्तक से, पृ. १४८

पशु एक ऐसी प्रयोगशाला है जिसमें 'प्रकृति' ने मानव को विकसित किया है; बहुत सम्भव है कि मानव भी ऐसी प्रयोगशाला हो जिसमें वह आत्मा को दिव्य सत्ता और दिव्य प्रकृति में बदल कर अतिमानव को विकसित करना चाहती हो। *—श्रीअरविन्द*

जो वरदान हमने माँगा है

परम पुरुष से जो वरदान हमने माँगा है, वह वह वरदान है जो धरती 'उच्चतम' से माँग सकती है, यह वह वर है जिसे सिद्ध करना सबसे अधिक कठिन है, जो अपनी शर्तों में सबसे अधिक कठोर है। यह जड़-भौतिक में परम 'सत्य' तथा 'शक्ति' को उतारने तथा जड़-भौतिक स्तर पर, उसकी चेतना तथा पार्थिव जगत् में अतिमानस को प्रतिष्ठित करने से कम नहीं है। और साथ ही यह ठीक जड़-भौतिक तत्त्व के मूल तक में पूर्ण रूपान्तर की क्रिया है। केवल परम 'कृपा' ही इस चमत्कार को सिद्ध कर सकती है।

परम 'शक्ति' सबसे अधिक जड़-भौतिक चेतना में उतर चुकी है, लेकिन वह भौतिक की घनता के परदे के पीछे छिपी खड़ी है और अपनी अभिव्यक्ति के पहले, यानी, उसका महान् कार्य शुरू हो उसके पहले, यह माँग कर रही है कि परम 'कृपा' को उतरने की शर्तें पूरी की जायें ताकि वह कृपा वास्तविक तथा प्रभावी बन सके। और इसके लिए सबसे पहली शर्त है कि 'सत्य' जड़-भौतिक सत्ता तथा 'प्रकृति' में अभिव्यक्त हो उसके पहले तुमलोग बिना किसी हिचक के, 'सत्य' को अपने अन्दर पूरी तरह से स्वीकार कर लो।

सम्पूर्ण समर्पण, भागवत प्रभाव के प्रति ऐकान्तिक रूप से आत्मोद्घाटन, हमेशा और पूर्ण रूप से सत्य का चुनाव और मिथ्यात्व का बहिष्कार —केवल ये ही हैं इसकी शर्तें। लेकिन इन शर्तों को पूरी तरह से, बिना कुछ बचाये, बिना टाल-मटोल या छल-कपट के, सरलता और सच्चाई के साथ सबसे अधिक जड़-भौतिक तथा उसकी क्रियाओं तक में पूरा करना होगा।

CWSA खण्ड १२, पृ. ३७२-७३ —श्रीअरविन्द

समस्त मानवजाति का दास बनने का अर्थ उसकी सेवा के लिए तत्पर रहना है, और कामधेनु बनने का अर्थ है शक्ति, प्रकाश और सामर्थ्य को इतनी प्रचुर मात्रा में दे सकना जितनी से मनुष्यजाति अपने अज्ञान और अपनी अक्षमता से बाहर निकल सके : यदि ऐसा न हो तो अतिमानव पृथ्वी के लिए एक सहायक नहीं बल्कि एक बोझ बन जायेगा।

३१.८.१९६९

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. २८७

नयी प्रजाति का प्रकट होना

हम देख आये हैं कि किसी नयी प्रजाति का प्रकट होना ही हमेशा यह घोषणा करता है कि धरती पर किसी नये तत्त्व का, चेतना के नये स्तर का, एक नयी शक्ति या ऊर्जा का अवतरण हुआ है। लेकिन साथ-ही-साथ, नयी प्रजाति में जहाँ अप्रकट शक्ति या चेतना आती है वहाँ उसके पहले की प्रजाति की एक या कई पुरानी विशेषताएँ खो भी सकती हैं जो उसकी पूर्व प्रजाति की विशेषताएँ थीं। उदाहरण के लिए, अगर हम प्रकृति के विकास के पिछले चरण को ही देखें तो मनुष्य और उसके पूर्ववर्ती वानर में कौन-से बड़े भेद हैं? हम देखते हैं कि बन्दर में जीवन-शक्ति और शारीरिक क्षमता लगभग पूर्णता तक पहुँची हुई हैं, एक ऐसी पूर्णता जिसे विकास-क्रम की नयी प्रजाति—मनुष्य—को छोड़ना पड़ा। मनुष्य उस तरह न तो पेड़ों पर अद्‌भुत रूप से चढ़ सकता है, न खाइयों पर कलाबाज़ियाँ मार सकता है, न एक चोटी से दूसरी चोटी तक फलाँग लगा सकता है। लेकिन इन चीज़ों के बदले उसने बुद्धि पायी है, विवेचन-शक्ति पायी है, जोड़ने की, निर्माण की क्षमता पायी है। निश्चय ही मनुष्य के साथ मन और बुद्धि का जीवन धरती पर प्रकट हुआ। मनुष्य तत्त्वतः एक मानसिक प्राणी है और यदि उसे ऐसा लगता है कि उसकी सम्भावनाएँ यहीं पर समाप्त नहीं हो जातीं, अगर वह अपने अन्दर अन्य जगत्, अन्य क्षमताएँ और मन से परे की चेतना के स्तर देखता है तो ये भविष्य के लिए प्रत्याशाएँ और आश्वासन हैं, वैसे ही जैसे बन्दर में भी इसी तरह मन की सम्भावनाएँ छिपी हुई हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. १८१

आवश्यक स्थिति

एक समय आयेगा जब मानव चेतना उस आवश्यक स्थिति में होगी जिससे अतिमानसिक चेतना इस मानव चेतना में प्रवेश कर स्वयं को अभिव्यक्त कर सके।

लेकिन यह सम्भव है कि मानवजाति की तरह, इस नयी जाति के आने में बहुत, बहुत अधिक समय लग जाये। और यह क्रमशः होगा। लेकिन, जैसा कि मैंने कहा, एक बात है : जब वह होगा, तब होगा। वह रबर-बैंड की तरह से नहीं होता, है न, उसकी तरह खींचा नहीं जाता; यह किसी

समय-विशेष पर ही होता है, जब अवतरण होता है, संयोजन होता है, तभी तादात्म्य होता है। यह निमिषमात्र में हो सकता है। एक मुहूर्त आता है जब यह घटता है। बाद में उसे बहुत, बहुत, बहुत लम्बा समय लग सकता है; तुम्हें यह आशा नहीं करनी चाहिये कि रातोरात तुम इधर-उधर अतिमानवों को उछलते देखोगे। नहीं, यह इस तरह नहीं होगा। केवल, वही लोग जानेंगे जिन्होंने वह सब किया होगा जो मैंने बतलाया, जिन्होंने अपने-आपको पूरी तरह से झोंक दिया होगा, सब कुछ के लिए सब संकट सहे होंगे। केवल वे ही जानेंगे; जब यह होगा तब वे जान जायेंगे।

तो क्या दूसरे देख भी न पायेंगे?

दूसरे? उन्हें इसका पता भी न चलेगा! क्या हुआ है यह जाने बिना वे अपना मूर्खता-भरा जीवन जारी रखेंगे।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ३६४-६५

अतिमानव होने का अर्थ है, दिव्य जीवन जीना, देव होना, क्योंकि देवगण भगवान् की शक्तियाँ हैं। वह मानवता के बीच भगवान् की शक्ति है।

भागवत सत्ता में जीना और दिव्य आत्मा की चेतना और उसके आनन्द, उसकी इच्छा और उसके ज्ञान को अपने ऊपर अधिकार करने देना, उसे अपने साथ और अपने द्वारा खेलने देना—यही सच्चा अर्थ है।

यही (सत्ता के) पर्वत-शिखर पर होने वाला तेरा रूपान्तर है। यह अपने अन्दर भगवान् को खोजना और उन्हें अपने आगे सभी चीज़ों में प्रकट करना है। उनकी सत्ता में निवास कर, उनकी ज्योति से चमक, उनकी शक्ति से कार्य कर, उनके आनन्द के साथ आनन्द मना। वह अग्नि और वह सूर्य और वह सागर बन जा। वह आनन्द, वह महानता और वह सुन्दरता बन जा।

जब तू यह कर ले, भले एक अंश में ही, तो तू अतिमानवता के पहले चरण को पा लेगा।

CWSA खण्ड १२, पृ. १५२ —श्रीअरविन्द

नयी जाति

अतिमानव कौन है

अतिमानव कौन है? वह जो इस जड़ाभिमुखी भग्न मनोमय मानव सत्ता से ऊपर उठ सके तथा एक दिव्य शक्ति, एक दिव्य प्रेम और आनन्द एवं एक दिव्य ज्ञान के अन्दर पहुँच कर अपने-आपको विश्व-भावापन्न और दिव्य-भावापन्न बना सके।

यदि तू इस संकीर्ण मानवीय अहंभाव को बनाये रखे और अपने को अतिमानव समझे तो तू अपनी ही अहंता के फेर में पड़ा हुआ मूढ़ है, अपनी निजी शक्ति के हाथों का खिलौना और अपनी निजी भूल-भ्रान्तियों की कठपुतली है।

नीत्शे ने अतिमानव को इस रूप में देखा मानों ऊँट की स्थिति से बाहर निकलती हुई कोई सिंह-आत्मा हो, पर अतिमानव का सच्चा आभिजातिक चिह्न और लक्षण तो यह है कि सिंह कामधेनु के ऊपर खड़े हुए ऊँट की पीठ पर अवस्थित हो। यदि तू समस्त मानवजाति का दास न बन सके तो तू उसका स्वामी बनने के योग्य नहीं है, और यदि तू अपने स्वभाव को वसिष्ठ की कामधेनु न बना सके जिसके थन से सारी मनुष्यजाति अपनी अभीप्सित वस्तु ले सके तो भला तेरे सिंह-सरीखे अतिमानवत्व का क्या लाभ?

CWSA खण्ड १२, पृ. ४३९-४०

अतिमानव का जन्म

हमने जिन महापुरुषों के बारे में जाना या सुना है उन्हीं जैसे, या उनसे भी बड़े, उनसे ज़्यादा प्रतिभाशाली और दक्ष मनुष्यों के निर्माण से अब काम न चलेगा। हमें निरन्तर प्रयास करके, हमेशा अपने विचारों और संकल्प-शक्ति के द्वारा अभीप्सा करते हुए उस ऊँची-से-ऊँची सम्भावना के साथ नाता जोड़ना चाहिये जो सभी मानव-मानकों और विशेषताओं से ऊपर है और जिसमें से अतिमानव जन्म लेगा। फिर से प्रकृति में वह महान् आवेग पैदा हो रहा है जो किसी एकदम नयी चीज़ को जन्म देना चाहता है, किसी ऐसी चीज़ को जिसकी हम आशा भी नहीं कर सकते। हमें इस आवेग का उत्तर देना चाहिये और इसके अनुसार चलना चाहिये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. १७८

अगला क्रमविकासात्मक मोड़ : तर्क-बुद्धि से अन्तःप्रेरणा तक

अभी मनुष्य का जीवन तर्क-बुद्धि के द्वारा चलता है। मन की सभी क्षमताएँ उसके लिए साधारण व्यवहार की चीज़ें हैं। अवलोकन और अनुमान उसके ज्ञान-प्राप्ति के साधन हैं। वह जीवन में तर्क के द्वारा किसी निर्णय पर पहुँचता और अपना रास्ता स्वयं चुनता है—या यह मानता है कि वह चुनता है।

नयी प्रजाति सहज ज्ञान के अनुसार चलेगी, यानी वह अपने अन्दर भगवान् के विधान को सीधा देख सकेगी। कुछ मनुष्य वस्तुतः सहज ज्ञान को जानते और अनुभव करते हैं, इसी तरह जंगल के कुछ गुरिल्ले निःसन्देह ऐसे भी होते हैं जिनके अन्दर बुद्धि की झाँकियाँ दिखायी देती हैं।

मनुष्यजाति में कुछ थोड़े-से लोगों ने अपनी आन्तरात्मिक प्रगति की है, अपनी सारी शक्तियों को अपनी सत्ता के सच्चे विधान को जानने के लिए केन्द्रित किया है, उनके अन्दर सहज ज्ञान की थोड़ी-बहुत क्षमता होती है। जब मन पूरी तरह से नीरव हो, अच्छे दमकते हुए आईने की तरह स्वच्छ हो और शान्त दिन के सरोवर की तरह चुपचाप और स्थिर हो तो जैसे तारों का प्रकाश निश्चल जलों पर पड़ता है उसी तरह ऊपर से अतिमानस का प्रकाश, अन्दर के 'सत्य' का प्रकाश नीरव मन में चमकता है और सहज ज्ञान को जन्म देता है। जिन्हें नीरवता में इस आवाज़ को सुनने का अभ्यास है वे इसी को अपने कार्यों की प्रेरणा बनाने का अधिक-से-अधिक प्रयास करते हैं और जहाँ साधारण आदमी बुद्धि और विवेचन के पेचीदा रास्तों पर भटकता रहता है, वहीं ये लोग जीवन के घुमावदार रास्तों से होते हुए इस श्रेष्ठतर सहज ज्ञान के मार्ग-दर्शन में सीधे चले जाते हैं, मानों उन्हें एक मज़बूत और अचूक हाथ चला रहा हो।

यह क्षमता आजकल बहुत ही विरल और अपवाद-रूप या अस्वाभाविक है, परन्तु नयी प्रजाति के लिए, कल के मनुष्य के लिए निश्चय ही यह बिलकुल सामान्य और स्वाभाविक होगी। लेकिन शायद उसका निरन्तर उपयोग मनुष्य की बुद्धि की क्षमताओं के लिए हानिकर हो। जैसे आज के मनुष्य में बन्दर की चरम शारीरिक क्षमताएँ नहीं हैं, उसी तरह शायद अतिमानव में मनुष्य की चरम बौद्धिक क्षमताएँ नहीं होंगी, उसमें अपने-आपको और औरों को धोखा देने की क्षमता न रहेगी।

जब मनुष्य बेधड़क होकर यह घोषणा कर सकेगा कि उसने अभी तक जो कुछ प्राप्त किया है—इसमें उसकी बुद्धि की भी गिनती हो जाती है जिसके बारे में उसे उचित, परन्तु साथ ही व्यर्थ गर्व है—वह अब काफ़ी नहीं है और अपने अन्दर की उस महान् शक्ति को खोलना, खोजना, उसे मुक्त करना ही अब से उसका सबसे बड़ा और मुख्य काम होगा, तब उसके लिए अतिमानवता का रास्ता खुल जायेगा। तब मनुष्य का दर्शन, विज्ञान, नीति-शास्त्र, सामाजिक जीवन, कला-कौशल आदि उसके महत्त्वपूर्ण कार्य-कलाप गोलाकार में चक्कर लगाने वाले उसके मन और प्राण का व्यायाम न रह कर मन और प्राण के पीछे छिपे महत्तर 'सत्य' की खोज के साधन और मानव-जीवन में उस सत्य की शक्ति को उतारने के साधन बन जायेंगे। और यह खोज हमारी वास्तविक, उच्चतम सत्ता और प्रकृति की खोज है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. १८१-८३

जो लोग भविष्य की सबसे अधिक सहायता करेंगे

जो लोग नव युग में मानवता के भविष्य की सबसे अधिक सहायता करेंगे वे वही होंगे जो आध्यात्मिक विकास को ही नियति और मानवजाति की सबसे बड़ी आवश्यकता के रूप में स्वीकार करेंगे—एक ऐसे विकास या परिवर्तन को जो वर्तमान मानवजाति को आध्यात्मीकृत मानवता में उसी तरह बदल देगा जैसे एक बड़ी हद तक पाशविक मनुष्य उच्च स्तर की मानसिक मानवजाति में बदला है।

वे अमुक विश्वासों या धर्म के रूपों की ओर से अपेक्षया उदासीन होंगे और मनुष्यों को उन विश्वासों और रूपों को अपनाने देंगे जिनकी ओर वे स्वभावतः आकर्षित हों। वे इस आध्यात्मिक परिवर्तन में श्रद्धा को ही आवश्यक मानेंगे। विशेषकर, वे यह सोचने की भूल नहीं करेंगे कि यह परिवर्तन यन्त्रों या बाहरी प्रथाओं के द्वारा लाये जा सकेंगे। वे यह बात जानते होंगे और इसे कभी न भूलेंगे कि ये परिवर्तन तब तक कभी वास्तविक नहीं बन सकते जब तक कि हर एक इन्हें अपने आन्तरिक जीवन में साधित न कर ले।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. १८४

एक नयी सामाजिक व्यवस्था और नयी जाति

क्योंकि धार्मिक विश्वास और मत गौण हो जायेंगे इसीलिए नैतिक विधि-निषेध, आचरण के नियम या रूढ़ियों का कोई मूल्य न रहेगा।

वास्तव में, मानव जीवन में सारी नैतिक समस्या प्राणिक इच्छाओं और आवेगों तथा मानसिक शक्ति के आदेशों के संघर्ष पर केन्द्रित है। जब प्राणिक इच्छा-शक्ति मानसिक शक्ति के अधीन हो तो व्यक्ति या समाज का जीवन नैतिक हो जाता है। लेकिन जब प्राणिक इच्छा और मानसिक शक्ति दोनों, समान रूप से एक अधिक ऊँची चीज़, अतिमानस के अधीन हों, केवल तभी मानव जीवन को पार किया जा सकता है और सच्चे आध्यात्मिक जीवन का, अतिमानव के जीवन का आरम्भ होता है। उसका विधान अन्दर से आयेगा, वह दिव्य विधान होगा जो हर सत्ता के केन्द्र में चमकता हुआ वहीं से जीवन पर शासन करेगा। यह दिव्य विधान अपनी अभिव्यक्ति में तो बहुविध होता है लेकिन अपने मूल में एक ही रहता है और इस एकता के कारण ही वह चरम व्यवस्था और सामञ्जस्य का विधान है।

इस भाँति व्यक्ति, जो अहंकार-भरे हेतुओं, विधि-विधानों, रीति-रिवाजों से प्रेरित न होगा, सभी अहंकार-भरे लक्ष्यों को त्याग देगा। पूर्ण अनासक्ति ही उसका नियम होगा। इहलोक में या परलोक में व्यक्तिगत लाभ पाने के लिए कार्य करना उसके लिए कल्पनातीत और असम्भव होगा। उसका हर एक कर्म प्रेरणा देने वाले दिव्य विधान की आज्ञानुसार पूर्ण, सरल और आनन्दमय आज्ञापालन होगा जिसमें परिणामों या पुरस्कारों की माँग न होगी, क्योंकि उस प्रेरणा के अनुसार कार्य करना, स्वयं अन्तर-स्थित भागवत तत्त्व के साथ चेतना और संकल्प में ऐक्य प्राप्त करने का आनन्द प्राप्त करना ही अपने-आपमें परम पुरस्कार होगा।

और इस तादात्म्य में ही अतिमानव अपना सामाजिक स्तर पायेगा। क्योंकि वह अपने अन्दर दिव्य विधान को पाकर, उसी दिव्य विधान को हर एक सत्ता के अन्दर देख सकेगा और अपने अन्दर उसके साथ तादात्म्य पाकर औरों के अन्दर भी उसके साथ तादात्म्य का अनुभव करेगा, और इस प्रकार केवल तत्त्व या सार रूप में ही नहीं, जीवन के अत्यन्त बाहरी स्तरों और रूपों में भी, सबकी एकता का भान प्राप्त कर लेगा। वह कोई मन, प्राण या शरीर न होकर उन्हें अनुप्राणित करने और सहारा देने वाली

नीरव, शान्त और शाश्वत आत्मा होगा जो इन सब पर शासन करती है; और वह देखेगा कि यही आत्मा हर जगह, सभी मन, प्राण, शरीरों को अनुप्राणित करती और सहारा देती है। वह इस 'आत्मा' को भागवत स्रष्टा और सभी कर्मों के कर्ता के रूप में जानेगा जो सभी सत्ताओं में मौजूद है; क्योंकि वैश्व अभिव्यक्ति की अनेक आत्माएँ एक ही भगवान् के अनेक चेहरे हैं। वह हर एक सत्ता को इस रूप में देखेगा मानों वही वैश्व भागवत सत्ता उसके आगे विभिन्न रूपों में आ रही है। वह अपने-आपको उस 'एक सत्ता' में मिला देगा और स्वयं अपने मन, प्राण और शरीर को उसी 'आत्मा' के पहलुओं के रूप में लेगा और आज वे सब, जिन्हें हम अपने से अलग मानते हैं, वे उसकी चेतना के लिए विभिन्न मन, प्राण और शरीरों में उसके स्व के ही रूप होंगे। वह सबके शरीरों में अपने शरीर को एक अनुभव कर सकेगा, क्योंकि उसे सारे पदार्थ की एकता का सतत भान होगा; वह सभी सत्ताओं के मन और प्राण के साथ अपने-आपको एक कर लेगा। संक्षेप में कहें तो वह औरों में अपने-आपको और अपने अन्दर औरों को देखेगा और अनुभव करेगा। इस प्रकार ऐक्य की पूर्णता में सच्ची एकात्मता की उपलब्धि करेगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. १८५-८७

अतिमानव की एक झलक

अगर तुम अतिमानव के उम्मीदवार हो तो तुम्हें अपने अहं को पार करने का निश्चय करना चाहिये, उससे ऊपर उठने का संकल्प करना चाहिये; क्योंकि जब तक तुम उसे अपने पास रखोगे तब तक तुम्हारे लिए अतिमानस एक अपरिचित, अप्राप्य वस्तु बना रहेगा।

लेकिन अगर प्रयास करके, साधना के द्वारा, प्रगतिशील आत्म-संयम के द्वारा, तुमने अपने अहं पर विजय प्राप्त कर ली है और अगर तुम उससे ऊपर उठ चुके हो, तो फिर वह तुम्हारी सत्ता के, चाहे एक सबसे छोटे ही अंश में क्यों न हो, ऐसा लगता है मानों कहीं पर एक छोटी-सी खिड़की है और उस खिड़की से ध्यानपूर्वक देखने पर तुम अतिमानस की एक झलक पा सकोगे। और यह एक प्रतिज्ञा है। जब तुम उसे देखते हो तो वह इतना सुन्दर लगता है कि उसी क्षण बाक़ी सारे... अहं से मुक्त

होने की इच्छा होती है!

अच्छी तरह ध्यान दो, मैं यह नहीं कह रही कि अतिमानस की झाँकी के लिए अहं से पूरी तरह मुक्त होना चाहिये; क्योंकि तब वह प्रायः असम्भव बात होगी। नहीं, किसी एक भाग में अहं से थोड़ा-सा मुक्त होना, तुम्हारी सत्ता के एक कोने में, चाहे मन के एक छोटे-से कोने में ही क्यों न हो; अगर मन या प्राण हो तो अच्छा ही है, लेकिन अगर संयोगवश—ओ! संयोगवश नहीं—अगर कई प्रयत्नों के बाद तुम अपने चैत्य पुरुष के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सके हो तो वहाँ का दरवाज़ा पूरा-पूरा खुला होता है। चैत्य पुरुष के द्वारा अचानक ही तुम्हें अतिमानस क्या है उसका स्पष्ट और सुन्दर दर्शन मिल सकता है; एक दर्शनमात्र, उपलब्धि नहीं। वह, वह बाहर निकलने का मुख्य द्वार है। लेकिन उस सुन्दर उपलब्धि, चैत्य पुरुष की उपलब्धि तक गये बिना भी—अगर तुम अपने मानसिक जगत् का एक हिस्सा या प्राणिक जगत् का एक हिस्सा मुक्त करने में सफल हो जाओ, तो वह दरवाज़े में एक छिद्र की भाँति होगा, दरवाज़े में चाबी का एक छेद; उस छेद में से तुम्हें एक छोटी, बहुत छोटी झलक मिलती है। और वह भी बहुत आकर्षक, बहुत रोचक होती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. २६८-६९

कहीं कोई विराम नहीं है

निश्चय ही, पूर्ण जाति एकदम सहज रूप से नहीं आ जायेगी। बहुत सम्भव है कि ऐसा न होगा। लेकिन वर्तमान मानव की तुलना में पहले प्रयासों में ही... बहुत ज़्यादा अन्तर होगा, इतना अधिक कि वह चमत्कार मालूम हो।

ऐसा अवश्य हो सकता है कि पहली अतिमानसिक अभिव्यक्तियाँ एकदम अपूर्ण हों। लेकिन इन्हें भी, आज का मनुष्य बिलकुल स्थूल लगेगा। वैश्व विकास में कहीं कोई विराम नहीं है, और जो चीज़ एक समय बिलकुल पूर्ण और अन्तिम मालूम होती है वह भी भावी अभिव्यक्तियों के लिए एक चरणमात्र होती है। लेकिन बहुधा मनुष्य बैठ कर कहना चाहते हैं: "बस, मुझे जो करना था सो कर लिया।"

लेकिन विश्व ऐसा नहीं है; वह बैठ नहीं जाता, वह आराम नहीं लेता,

वह हमेशा चलता चला जाता है। तुम कभी नहीं कह सकते : "बस, पूरा हो गया, अब मैं द्वार बन्द किये देता हूँ, बस, हो लिया।" तुम दरवाज़ा बन्द कर सकते हो पर तब तुम अपने-आपको वैश्व गति से काट लेते हो। अभिव्यक्तियाँ हमेशा सापेक्ष होती हैं और ऐसी पहली सत्ता जो मानव-पशु न होकर दिव्य-मानव या दिव्य-मनुष्य होना शुरू करेगी, वह नयी जाति के पूरे नमूने की दृष्टि से चाहे कितनी भी अधूरी क्यों न हो, एकदम से अद्‌भुत चीज़ मालूम होगी। तुम्हें सतत गति में निवास करने का अभ्यस्त होना चाहिये। शायद क्रिया को आसान बनाने की दृष्टि से यह ज़रूरी हो, कोई चीज़ ऐसी होती है जो एक लक्ष्य निश्चित करके कहती है : "यह सचमुच अन्त है", पर बिलकुल नहीं। "यह पूर्णता है"—निरपेक्ष पूर्णता है ही नहीं। सभी चीज़ें सदा सापेक्ष होती हैं और सदा ही बदलती रहती हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ४७०-७१

जब सम्पूर्ण 'प्रेममय' हृदय परम ज्ञान के द्वारा एक अचञ्चल परमानन्द में समा जाता है और शक्ति के साथ स्पन्दित होता है, जब 'शक्ति' के बलशाली हाथ जगत् के लिए परिश्रम करके उसे आनन्द और प्रकाश की कान्तिमय पूर्णता से रँग देते हैं, जब ज्ञान का ज्योतिर्मय मस्तिष्क हृदय की अस्पष्ट अभीप्साओं को स्वीकार कर उन्हें रूपान्तरित कर देता है और वह ज्ञान उच्च प्रतिष्ठित 'संकल्प-शक्ति' के प्रति स्वयं को निछावर कर देता है, जब ये सभी देवगण एकजुट हो, अन्तरात्मा के यज्ञ की एकता में भाग लेने धरती की सभी चीज़ों को स्वीकार कर स्वयं रूपान्तरित होना स्वीकार कर लेते हैं, तब मनुष्य सर्वांगीण रूप से आत्म-अतिक्रमण की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। यही है अतिमानवत्व का भागवत तरीक़ा; वह नहीं जिसमें दम्भी, बलशाली, प्रतापी तथा आत्म-केन्द्रित देवता मानवता को दास बना कर उसके सिर पर सवार हो जाये।

CWSA खण्ड १३, पृ. १५७ —*श्रीअरविन्द*

मानव और अतिमानव

अतिमानव का मानव के प्रति मनोभाव

मधुर माँ, अतिमानव का मनुष्यों के प्रति कैसा मनोभाव होगा?

मनुष्यों का पशुओं के प्रति कैसा भाव है? हम आशा करते हैं वह ज़रा ज़्यादा दयालु होगा! (*हँसी*)

... अतिमानसिक चेतना के लिए मनुष्य सचमुच मूढ़ है। हाँ, अपनी समस्त पूर्णताओं, अपनी समस्त सिद्धियों, वह सब, यहाँ तक कि अपनी समस्त उपलब्धियों के बावजूद, हाँ, वह **भयंकर रूप से** मूढ़ दीखता है। लेकिन, उसके साथ बुरा व्यवहार करने के लिए यह कोई कारण नहीं है। और मुझे नहीं लगता कि अतिमानव किसी के साथ दुर्व्यवहार करेगा, सिर्फ़ इसलिए क्योंकि उसकी चेतना ऐसी होगी जो बाहरी आभासों के पीछे जा सकेगी। हम आशा करते हैं कि वह बहुत दयालु होगा।

(पवित्र) अतिमानव के प्रति मनुष्य का क्या मनोभाव होगा?

आहा! (*हँसी*) हम आशा करते हैं वैसा ही भाव न होगा जैसा मनुष्य का अपने सब देवताओं के प्रति होता है, क्योंकि उसने उनके साथ काफ़ी दुर्व्यवहार किया है। आदमी ने अपने पैग़म्बर और अपने देवता को सूली पर चढ़ाया, उन पर पथराव किया, उन्हें ज़िन्दा जलाया—वस्तुतः, आदमी ने उन सबके साथ काफ़ी बुरा व्यवहार किया है जो उसे नये जीवन का उपदेश देने आये थे। चलो, हम आशा करते हैं कि आदमी ज़रा ज़्यादा समझदार बनेगा... अब वह उन्हें कारागार में डाल देगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ३६५-६६

मनुष्य में सचेतन क्रम-विकास की सम्भावना

जब मन धरती पर अवतरित हुआ, जिस क्षण मन पार्थिव वातावरण में अभिव्यक्त हुआ और जिस क्षण पहला मनुष्य प्रकट हुआ, दोनों के बीच लगभग लाखों वर्ष गुज़र गये। अब यह कार्य अधिक तेज़ी से होगा, क्योंकि अब मनुष्य इसकी आशा करता है, उसका इस विषय में एक अस्पष्ट-सा विचार है; वह कुछ अर्थ में अतिमानव के आविर्भाव की प्रत्याशा करता

है। जब कि, निश्चय ही, बन्दरों ने मनुष्य के जन्म की आशा नहीं की थी, उन्होंने कभी उसकी बात नहीं सोची थी—इस समुचित कारण से कि सम्भवतः वे बहुत नहीं सोचते। परन्तु मनुष्य ने इस विषय में सोचा है और वह उसकी प्रतीक्षा कर रहा है, अतएव कार्य तीव्र गति से चलेगा। परन्तु फिर भी तीव्र गति का अर्थ है हज़ारों वर्ष, शायद। हम इस विषय में कुछ हज़ार वर्ष बाद फिर से बात करेंगे!... जो लोग आन्तरिक रूप में तैयार हैं, जो खुले हुए हैं और उच्चतर शक्तियों के सम्पर्क में हैं, जिन लोगों को थोड़ा-बहुत अतिमानसिक 'ज्योति' और 'चेतना' का सीधा व्यक्तिगत सम्पर्क प्राप्त हो चुका है, वे पार्थिव वातावरण में उत्पन्न अन्तर को अनुभव करने में सक्षम हैं।

परन्तु उसके लिए... केवल सजातीय ही सजातीय को पहचान सकता है, व्यक्ति के अन्दर विद्यमान अतिमानसिक 'चेतना' ही पार्थिव वातावरण में क्रियाशील 'अतिमानस' के विषय में अवगत हो सकती है। जिन लोगों ने, किसी-न-किसी कारणवश, इस दर्शन-शक्ति को विकसित कर लिया है वे इसे देख सकते हैं। परन्तु जो लोग आन्तरिक सत्ता के विषय में भी सचेतन नहीं हैं—जो थोड़ी-सी अन्दर है—और जो अपनी अन्तरात्मा के विषय में कुछ भी कहने में एकदम किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं, ऐसे लोग निश्चय ही पार्थिव वातावरण में उत्पन्न भेद को समझ सकने के लिए तैयार नहीं हैं। उन्हें इसके लिए अभी बहुत लम्बा रास्ता तय करना होगा। कारण, जिन लोगों की चेतना कम या अधिक ऐकान्तिक रूप से बाह्य सत्ता पर—मानसिक, प्राणिक और भौतिक सत्ता पर—केन्द्रित होती है, उनके लिए वस्तुओं को एक ऊटपटाँग और अप्रत्याशित रूप ग्रहण करने की आवश्यकता होती है और तभी वे उन्हें स्वीकार कर पाते हैं। तब वे उन्हें चमत्कार कहते हैं।

परन्तु जब शक्तियों के हस्तक्षेप का यह चमत्कार निरन्तर होता रहता है जो परिस्थितियों तथा अवस्थाओं को बदल देता है और जिसका परिणाम बहुत व्यापक होता है, इसे वे चमत्कार नहीं कहते, क्योंकि सिर्फ़ बाहरी रूप मात्र ही दिखायी देता है और यह बिलकुल स्वाभाविक प्रतीत होता है। परन्तु, सच पूछा जाये तो, छोटी-से-छोटी वस्तु जो होती है उस पर यदि तुम विचार करो तो तुम यह स्वीकार करने के लिए बाध्य होओगे कि यह चमत्कारपूर्ण है। —'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. १५३-५४

मनुष्य सहयोग दे सकता है

माताजी, जब पार्थिव वातावरण में मन अवतरित हुआ, बन्दर ने मनुष्य-रूप में परिवर्तित होने का कोई प्रयत्न नहीं किया था, किया था क्या? वास्तव में प्रकृति-माता ने ही उस प्रयास की व्यवस्था की थी। परन्तु यहाँ...।

परन्तु स्वयं मनुष्य अपने-आपको अतिमानव में परिवर्तित करने नहीं जा रहा!

नहीं?

थोड़ा-सा प्रयास कर देखो! (*हँसी*)

तो ऐसा है समझे, कोई दूसरी चीज़ है जो कार्य करने जा रही है।...

केवल—हाँ, यहाँ एक केवल है, मैं उतना निर्मम नहीं होना चाहती: **अब मनुष्य सहयोग दे सकता है**। कहने का तात्पर्य, वह इस प्रक्रिया में, शुभेच्छा के द्वारा, अभीप्सा के द्वारा हाथ बँटा सकता है, और यथाशक्ति अधिक-से-अधिक सहायता कर सकता है। यही कारण है कि मैंने कहा था कि यह काम अधिक तेज़ी से चलेगा। मैं आशा करती हूँ कि यह **बहुत अधिक** तेज़ी से चलेगा।

परन्तु, आख़िरकार, यह बहुत अधिक तेज़ी भी कुछ तो समय लेगी ही!

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. १५७

मानवजाति के तीन स्तर

निम्नतर मानवजाति मन से प्राण और शरीर की ओर खिंचती है। औसत मानवजाति सदा मन में निवास करती है जो प्राण और शरीर की ओर दृष्टि लगाये रहता और उनसे सीमित रहता है। उच्चतर मानवजाति या तो आदर्श मानसिकता या शुद्ध भाव, ज्ञान के प्रत्यक्ष सत्य और सत्ता के सहज सत्य की ओर उठती है। श्रेष्ठ मानवजाति दिव्य आनन्द की ओर उठती है और उस स्तर से या तो ऊपर शुद्ध सत् और परब्रह्म की ओर उठती है या अपने निम्नतर अंगों को आनन्द देने के लिए इस मानवजाति को अपने और दूसरों के अन्दर दिव्यता तक उठाने के लिए बनी रहती है।

जो मनुष्य परदा चाक करके अपनी चेतना के उच्चतर या दिव्य परन्तु वर्तमान में प्रच्छन्न गोलार्ध में निवास करता है वही सच्चा अतिमानव और इस जगत् में भगवान् की उत्तरोत्तर आत्माभिव्यक्ति, जड़तत्त्व में से आत्मा का अन्तिम उत्पादन है—जिसे अब क्रमविकास का तत्त्व कहते हैं।

भागवत जीवन, शक्ति, प्रकाश और आनन्द में उठना और उस साँचे में सांसारिक जीवन को ढालना धर्म की परम अभीप्सा और योग का पूर्ण व्यावहारिक लक्ष्य है। लक्ष्य है भगवान् को विश्व में चरितार्थ करना, लेकिन यह विश्व के परात्पर भगवान् को चरितार्थ किये बिना नहीं हो सकता।

—*'मानव से अतिमानव की ओर'* पुस्तक से, पृ. १७१

उच्चतर मानवता

सवेरे से शाम तक श्रीअरविन्द यहाँ मौजूद थे।

हाँ, और एक घण्टे से भी ज़्यादा के लिए उन्होंने मुझे उस जीवन में रखा जो मानवजाति और मानवजाति के विभिन्न स्तरों के बीच नयी या अतिमानसिक सृष्टि के सम्बन्ध का जीवित और ठोस दृश्य था। वह अद्‌भुत रूप से स्पष्ट, जीवन्त और ठोस था...। वह सारी मानवजाति थी जो अब पूरी तरह पाशविक नहीं है, जिसने मानसिक विकास से लाभ उठाया है और अपने जीवन में एक तरह का सामञ्जस्य पैदा किया है—एक ऐसा सामञ्जस्य जो प्राणिक, कलात्मक और साहित्यिक है—और उसमें रहने वालों का बहुत बड़ा भाग उससे सन्तुष्ट है। उन्होंने एक प्रकार का सामञ्जस्य पा लिया है और उसके अन्दर वे ऐसा जीवन जीते हैं जैसा सभ्य परिस्थितियों में हुआ करता है, यानी, ऐसा जीवन जो कुछ-कुछ सुसंस्कृत होता है, जिसमें परिष्कृत रुचियाँ और परिष्कृत आदतें होती हैं। उस सारे जीवन में एक विशेष सौन्दर्य होता है जिसमें वे आराम से रहते हैं। जब तक कोई अनर्थ ही न हो जाये वे प्रसन्न और सन्तुष्ट रहते हैं, जीवन से सन्तुष्ट रहते हैं। ऐसे लोग आकर्षित हो सकते हैं (क्योंकि उनकी अभिरुचि सुसंस्कृत है और वे बौद्धिक दृष्टि से विकसित हैं), वे नयी शक्तियों से, नयी चीज़ों से, भावी जीवन से आकर्षित हो सकते हैं; उदाहरण के लिए, वे मानसिक रूप से, बौद्धिक रूप से श्रीअरविन्द के शिष्य बन सकते हैं। लेकिन उन्हें भौतिक दृष्टि से बदलने की ज़रा भी ज़रूरत नहीं मालूम होती; और अगर

वे बाधित किये जायें तो पहले तो यह असामयिक और अनुचित होगा और फिर व्यर्थ ही में उनके जीवन में अव्यवस्था और गड़बड़ी पैदा कर देगा।

यह बहुत स्पष्ट था।

और फिर कुछ ऐसे थे—विरले व्यक्ति—जो रूपान्तर के लिए तैयारी करने के लिए, नयी शक्ति को खींचने के लिए, 'जड़-द्रव्य' को अनुकूल बना लेने और अभिव्यक्ति के साधन खोजने के लिए आवश्यक प्रयास करने को तैयार थे। ये लोग श्रीअरविन्द के योग के लिए तैयार हैं। ये संख्या में बहुत ही कम हैं। ऐसे लोग भी हैं जो यज्ञ की भावना से भरे हैं। वे कठोर, कष्टप्रद जीवन के लिए भी तैयार हैं यदि वह इस भावी रूपान्तर की तरफ़ ले जाये या उसमें सहायता दे। लेकिन उन्हें कभी, किसी प्रकार, दूसरों को प्रभावित करने की कोशिश नहीं करनी चाहिये, उन्हें अपने प्रयास में भाग लेने के लिए मजबूर नहीं करना चाहिये; यह बिलकुल अनुचित होगा—केवल अनुचित ही नहीं, बल्कि एकदम भद्दा भी। क्योंकि उससे वैश्व लय और गति, या कम-से-कम पार्थिव गति में परिवर्तन आ जायेगा और यह सहायता करने की जगह संघर्ष उत्पन्न करेगा और परिणति होगी विशृंखलता में।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. २४-२५

संक्रमण-काल

स्पष्टतः, अभी यह एक संक्रमण-काल है जो काफ़ी लम्बे समय तक रह सकता है और है भी कष्टदायक। कभी-कभी इस कष्टदायक प्रयास (बहुधा कष्टदायक) की क्षतिपूर्ति, हमें जिस लक्ष्य तक पहुँचना है उसके स्पष्ट दर्शन से, उस लक्ष्य के स्पष्ट दर्शन से जिसे हम जरूर प्राप्त **करेंगे** : एक आश्वासन से, हाँ, निश्चिति से होती है। लेकिन वह कुछ ऐसी चीज़ होगी जिसमें मानसिक जीवन की समस्त भ्रान्ति, विकृति, सारी कुरूपता को निकाल बाहर करने की शक्ति होगी—और तब वह ऐसी मानवजाति होगी जो बहुत प्रसन्न, मानव होने से बहुत सन्तुष्ट होगी, जिसे मनुष्य से अलग कुछ और बनने की ज़रूरत महसूस न होगी, लेकिन उसमें मानव-सौन्दर्य और मानव-सामञ्जस्य होगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. २७

मध्यवर्ती जातियाँ

निश्चयपूर्वक यह दावा किया जा सकता है कि मानसिक और अतिमानसिक सत्ताओं के बीच एक मध्यवर्ती जाति होगी, एक तरह का अतिमानव जिसमें अभी मनुष्य की प्रकृति के कुछ अंश और गुण बाक़ी होंगे, अर्थात्, जो अपने अति बाह्य रूप में मनुष्य ही होगा जिसका मूल है पशु, पर जो अपनी चेतना को इतना रूपान्तरित कर लेगा कि वह अपनी उपलब्धि और अपने कार्य में एक नयी जाति, अतिमानव-जाति का सदस्य हो सके।

इस जाति को संक्रमणशील जाति माना जा सकता है, क्योंकि पहले से ही जाना जा सकता है कि यह पुराने पाशविक तरीक़े में से गुज़रे बिना नयी सत्ताओं को जन्म देने के साधन खोज निकालेगी, ये ही वे सत्ताएँ होंगी—जिनका जन्म, सचमुच, आध्यात्मिक जन्म कहलायेगा—जो नयी जाति के, अतिमानव-जाति के तत्त्वों का निर्माण करेंगी।

अतः हम उन्हें अतिमानव कह सकते हैं जो जन्मे तो पुरानी प्रजनन-पद्धति से हैं पर अपनी उपलब्धि में अतिमानसिक सिद्धि के नये जगत् के साथ सचेतन और सक्रिय सम्पर्क बनाये हुए हैं।

लगता है—बल्कि यह निश्चित है—कि मध्यवर्ती जगत् को, जो पहले से ही तैयार हो रहा है, बनाने वाला पदार्थ अधिक समृद्ध, अधिक शक्तिशाली, अधिक आलोकमय, अधिक सहिष्णु, कुछ अधिक सूक्ष्म, और अधिक पैने, नये गुणों से युक्त है, और इसमें सर्वव्यापकता की तरह की जन्मजात क्षमता है, मानों इसकी सूक्ष्मता और परिमार्जन के कारण स्पन्दनों को, यदि बिलकुल पूरी तरह नहीं, तो कम-से-कम अधिक विस्तृत रूप में अनुभव किया जा सकता है और वह विभाजन के उस संवेदन को दूर कर देता है जो प्राचीन पदार्थ द्वारा, सामान्य मानसिक पदार्थ द्वारा अनुभव होता है। स्पन्दन की एक सूक्ष्मता जो बोध-क्षमता को सार्वभौम और विश्वव्यापी बनाती है, सहज और नैसर्गिक है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ३४३-४४

पूर्ण तपस्या : वह जो अपने लक्ष्य तक पहुँचेगी।

—श्रीमाँ

शिक्षार्थी-अतिमानव

मानव और अतिमानव? तुम नयी अतिमानसिक जाति की बात तो नहीं कर रहे, कर रहे हो क्या? क्या सचमुच तुम उसी की बात कर रहे हो जिसे *हम* अतिमानव कहते हैं, अर्थात्, मनुष्य, जो मानवीय ढंग से जन्मा है और अपनी भौतिक सत्ता का, जो उसे साधारण मानव जन्म के द्वारा मिली है, रूपान्तर करने की कोशिश कर रहा है? सोपान? अवश्य, असंख्य **आंशिक** उपलब्धियाँ होंगी। हर एक की क्षमता के अनुसार रूपान्तर का स्तर अलग-अलग होगा, और यह निश्चित है कि अतिमानव से मिलती-जुलती चीज़ तक पहुँचने से पहले न्यूनाधिक सफल या असफल प्रयास काफ़ी संख्या में होंगे, और ये ही लगभग सफल प्रयोगात्मक प्रयास होंगे।

वे सब जो अपनी साधारण प्रकृति पर विजय पाने की कोशिश करते हैं, जो उन गहनतर अनुभूतियों को भौतिक रूप में संसिद्ध करने की कोशिश करते हैं जो उन्हें दिव्य 'सत्य' के सम्पर्क में ले आयी हैं, जो अपनी दृष्टि 'परात्पर' और 'परम' की ओर मोड़ने के बजाय अपने अन्दर उपलब्ध चेतना के परिवर्तन को भौतिक रूप में, बाह्य रूप में संसिद्ध करने की कोशिश करते हैं वे सब शिक्षार्थी-अतिमानव हैं। और उनके प्रयास की सफलता में अनगिनत अन्तर हैं। हर बार जब हम कोशिश करते हैं कि साधारण व्यक्ति न बने रहें, साधारण जीवन न बितायें, अपनी गतिविधियों में, कार्य-कलापों और प्रतिक्रियाओं में दिव्य 'सत्य' को अभिव्यक्त करें, जब हम व्यापक अज्ञान द्वारा शासित न होकर उस 'सत्य' द्वारा शासित होते हैं, तब हम शिक्षार्थी-अतिमानव होते हैं और अपने प्रयासों की सफलता के अनुपात में, कम या अधिक, अच्छे शिक्षार्थी होते हैं, पथ पर कम या अधिक आगे बढ़े हुए।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ४४७

मानव अन्तिम नहीं है, वह संक्रमणशील सत्ता है।
उसके परे तैयार खड़ी है दिव्य सत्ता—अतिमानव।

CWSA खण्ड १२, पृ. २२१ —श्रीअरविन्द

पहली अतिमानसिक जाति और उसका निर्माण

ऐसा लगता है कि कुछ लोगों ने ऐसा समझा कि मैं यह घोषणा कर रही हूँ कि अतिमानस अभी दस लाख वर्षों तक नहीं आयेगा! मैं इस धारणा का संशोधन करना चाहती हूँ।

श्रीअरविन्द ने कहा है कि जैसे-जैसे विकास चेतना की क्रम-परम्परा में ऊपर उठता है, उसकी गति अधिकाधिक तेज़ होती जाती है, और जब 'आत्मा' या 'अतिमानस' इसमें हस्तक्षेप करता है, यह कहीं अधिक तेज़ी से आगे बढ़ सकता है। अतएव हम आशा कर सकते हैं कि कुछ शताब्दियों के अन्दर पहली अतिमानसिक जाति प्रकट हो जायेगी।

परन्तु यह भी कुछ लोगों के लिए बिलकुल घबरा देने वाली बात है, क्योंकि वे समझते हैं कि यह बात श्रीअरविन्द जिस बात की सर्वदा प्रतिज्ञा करते रहे हैं उसका खण्डन करती है: वे कहते रहे हैं कि अतिमानसिक रूपान्तर के सम्भव होने का समय आ गया है...। परन्तु हमें अतिमानसिक रूपान्तर को नवीन जाति के प्रादुर्भाव के साथ मिला नहीं देना चाहिये।

श्रीअरविन्द ने जिस बात का वचन दिया था और जिस बात में स्वभावतः हमलोगों को, जो इस समय यहाँ हैं, दिलचस्पी है, वह यह है कि वह समय आ गया है जब मानवजाति के कुछ श्रेष्ठ व्यक्ति, जो आध्यात्मीकरण के लिए आवश्यक शर्तों को पूरा करेंगे, अतिमानसिक 'शक्ति', 'चेतना' और 'ज्योति' के द्वारा अपने शरीर का रूपान्तर करने में समर्थ होंगे, ताकि वे पशु-मानव न रहें बल्कि अतिमानव बन जायें।

यह वचन श्रीअरविन्द ने दिया है और इसे उन्होंने अपने इस अनुभूत ज्ञान पर प्रस्थापित किया था कि अतिमानसिक 'शक्ति' पृथ्वी पर अभिव्यक्त होने को है। यथार्थ में वह उनके अन्दर बहुत पहले ही अवतरित हो गयी थी, उन्हें इसका पता था और वे जानते थे कि उसके परिणाम क्या हुए थे।

और अब जब कि वह विश्वव्यापी रूप में अभिव्यक्त हो गयी है, मैं कह सकती हूँ कि सामान्यतया, रूपान्तर की सम्भावना की निश्चितता स्वभावतः और भी अधिक बढ़ गयी है। अब कोई सन्देह नहीं कि जो लोग शर्तों को पूरा करेंगे अथवा जो अब पूरा कर रहे हैं, वे इस रूपान्तर के पथ पर हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ३८६

अतिमानव अतिमानसिक तरीक़े से निर्मित होगा

निश्चय ही यह वही चीज़ है जिसकी श्रीअरविन्द हमसे आशा करते थे और जिसकी उन्होंने एक ऐसे अतिमानव के रूप में कल्पना की थी जो वर्तमान मानव और अतिमानव के बीच एक मध्यवर्ती सत्ता होगा, उस अतिमानव की जो अतिमानसिक तरीक़े से *निर्मित होगा*, जो पशु की श्रेणी में बिलकुल न रहेगा और जो पशुजीवन-सम्बन्धी समस्त आवश्यकताओं से मुक्त होगा। हमलोग, जैसे अब हैं, सामान्य पशु-पद्धति से उत्पन्न हुए हैं और परिणामतः यदि हम अपने-आपको रूपान्तरित कर भी लें फिर भी हमारे अन्दर पशु-उद्गम का कुछ-न-कुछ अंश बचा ही रहेगा। पर श्रीअरविन्द की दृष्टि का अतिमानव साधारण पशु-पद्धति से जन्म **हर्गिज़** नहीं लेगा, बल्कि वह सीधा, एक ऐसी प्रक्रिया द्वारा निर्मित होगा जो अभी तक हमें गुह्य प्रतीत होती है, पर जो शक्तियों और उपादान का एक ऐसा प्रयोग होगी जिससे शरीर साधारण पशु-विधान के अनुसार की गयी रचना न होकर "भौतिकीकरण" होगा।

यह बिलकुल स्पष्ट है कि मध्यवर्ती सत्ताओं का होना ज़रूरी है और यह भी कि इन्हीं मध्यवर्ती सत्ताओं को ही उन साधनों को खोजना होगा जो अतिमानस की सत्ताओं को रूपायित कर सकें। इसमें सन्देह नहीं कि श्रीअरविन्द ने जब यह लिखा था तो उनका विश्वास था कि इसी कार्य को हमें करना है। मैं सोचती हूँ—मैं जानती हूँ—कि अब यह सुनिश्चित है कि हम उस चीज़ को पा लेंगे जिसकी उन्होंने हमसे आशा की है। अब यह आशा-मात्र नहीं रही, बल्कि एक निश्चिति हो गयी है। अब केवल समय की बात है जो इस उपलब्धि के लिए ज़रूरी है और वह हमारे व्यक्तिगत प्रयत्न, हमारी एकाग्रता और हमारी सद्भावना के... और उस **महत्त्व** के अनुसार जो हम इस तथ्य को देते हैं, कम या अधिक लम्बा होगा। अन्यमनस्क दर्शक को चीज़ें बहुत कुछ वैसी ही लग सकती हैं जैसी वे पहले थीं, पर जो देखना जानता है और बाह्य प्रतीतियों द्वारा भ्रान्त नहीं होता, उसके लिए चीज़ें ठीक चल रही हैं।

प्रत्येक अपना अधिकतम प्रयत्न करता चले तो शायद सबके लिए पहले प्रत्यक्ष परिणामों के दृष्टिगत होने में बहुत अधिक वर्षों के बीतने की ज़रूरत न होगी। —'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. २१४-१५

अतिमानव की चेतना का अवतरण

स्वर्णिम प्रभात : १ जनवरी १९६९

अवतरण के बारे में, जिसे माताजी ने अतिमानव की चेतना का अवतरण बताया।

वह रात को धीरे-धीरे आया और आज सवेरे जागने पर मानों स्वर्णिम 'प्रभात' था, वातावरण इतना हलका था। शरीर को लगा : "यह सचमुच, सचमुच नया है।" एक स्वर्णिम प्रकाश, पारदर्शक और... सद्भावनापूर्ण। निश्चिति के अर्थ में "सद्भावनापूर्ण"—सामञ्जस्यपूर्ण निश्चिति। वह नया था।

तो यह बात थी।

जब मैं लोगों से "शुभ नव वर्ष" कहती हूँ तो मैं उन्हें वह बाँटती हूँ। और आज सवेरे मैंने अपना समय सहज रूप से "शुभ नव वर्ष, शुभ नव वर्ष" कहते-कहते बिताया। तो...।

पहली तारीख़ को सवेरे सचमुच आश्चर्यजनक बात हुई...।

यह बहुत ज़्यादा द्रव्यात्मक वस्तु थी, यानी, बहुत बाहरी—बहुत बाहरी—और वह स्वर्णिम ज्योति से दीप्तिमान थी। वह बहुत बलशाली, बहुत शक्तिशाली थी; लेकिन उसका स्वभाव स्मितपूर्ण हितैषिता का था, शान्त हर्ष और एक प्रकार से हर्ष और ज्योति की ओर एक प्रकार का उद्घाटन। वह "शुभ नव वर्ष" की तरह शुभ कामना थी। उसने मुझे अचम्भे में डाल दिया। वह कम-से-कम तीन घण्टे रही, मैंने उसे अनुभव किया। उसके बाद मैं उसके साथ व्यस्त न रही। मुझे पता नहीं क्या हुआ! लेकिन मैंने तुमसे उसके बारे में दो-एक शब्द कहे थे। और भी दो-तीन लोगों से मैंने उसके बारे में बात की : उन सभी ने उसे अनुभव किया था। मतलब यह कि वह *बहुत* द्रव्यात्मक थी। उन सभी ने उसे यूँ अनुभव किया : एक प्रकार का हर्ष, लेकिन मैत्रीपूर्ण हर्ष, शक्तिशाली, और... ओह! बहुत, बहुत कोमल, बहुत स्मितपूर्ण, **बहुत हितैषितापूर्ण**...।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. १५७, १५८

एक महान्, सद्भावनापूर्ण व्यक्तित्व

... मुझे ऐसा लगा कि कोई बहुत बड़ा व्यक्तित्व है—बहुत ही बड़ा, यानी, ऐसा जिसके लिए समस्त धरती छोटी-सी है, धरती इतनी छोटी (*माताजी हथेली में गेंद पकड़ने की मुद्रा करती हैं*), गेंद जैसी—एक विशालकाय व्यक्तित्व, बहुत, बहुत सद्भावनापूर्ण, जो आता है... (*माताजी हथेली पर से गेंद को बहुत धीमे-से उठाती हुई प्रतीत होती हैं*)। उससे सगुण भगवान् की छाप थी (और फिर भी... पता नहीं), सहायता के लिए जो आता है, इतना बलवान्, इतना बलवान् और साथ-ही-साथ इतना कोमल, सबको अपने आलिंगन में भरता हुआ।

और वह बहुत बाहरी था : शरीर ने उसे सब जगह अनुभव किया, सब जगह (*माताजी अपने चेहरे को, हाथों को छूती हैं*), सब जगह।...

साल का प्रारम्भ था। ऐसा था मानों कोई देवाकार (यानी, कोई) "शुभ नव वर्ष" की कामना करने आया था और उसमें वर्ष को शुभ बनाने की पूरी शक्ति थी। वह ऐसा था।...

वह दीप्तिमान, मुस्कुराता हुआ, **शक्ति से मण्डित** कितना सद्भावनापूर्ण था; यानी, सामान्यतः मनुष्य के अन्दर सद्भावना एक दुर्बल चीज़ होती है, इस अर्थ में कि वह युद्ध को पसन्द नहीं करती, लड़ना नहीं चाहती; लेकिन यह उस तरह का न था! एक ऐसी सद्भावना जो बाधित करती है (*माताजी दोनों हाथों की मुट्ठियाँ कुरसी के हत्थों पर उतारती हैं*)।

मुझे इसमें दिलचस्पी हुई क्योंकि यह बिलकुल नया है। और इतना ठोस! इसकी तरह ठोस (*माताजी अपनी कुरसी के हत्थों को छूती हैं*), वैसा ठोस जिसे भौतिक चेतना साधारणतः "और लोग" सोचती है। यानी, वह आन्तरिक सत्ता में, चैत्य सत्ता में से नहीं आया था, **सीधा** शरीर पर आया था।...

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. १५९-६०

समस्त कार्य को एक खेल होना चाहिये,
लेकिन एक दिव्य-खेल,
जो भगवान् के लिए और भगवान् के साथ खेला जाता है।

—श्रीमाँ

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

जनवरी

१. जब तुम अच्छे होते हो, जब तुम उदार होते हो, महान्, निःस्वार्थ और परोपकारी होते हो तो तुम अपने अन्दर, अपने चारों ओर एक विशेष वातावरण उत्पन्न करते हो और यह वातावरण एक प्रकार की ज्योतिर्मयी शान्ति की तरह होता है।

२. प्रगति करने का और अपने-आपको शुद्ध करने का संकल्प ही चैत्य अग्नि को प्रज्वलित करता है; प्रगति का संकल्प ही। जिन लोगों में प्रबल संकल्प-शक्ति होती है वे जब इसे आध्यात्मिक प्रगति और शुद्धि की ओर मोड़ते हैं तो उनके अन्दर वह अग्नि अपने-आप प्रज्वलित हो उठती है।

३. तुम्हें अधिकाधिक सचेतन होना चाहिये, तुम जो भी हो उसे अधिक-से-अधिक पूर्णता के साथ प्रतिष्ठित करो...।

४. तुम्हें रुकना न चाहिये, तुम्हें अपनी ऊपर की ओर उन्नति के साथ इस तरह न चिपकना चाहिये कि आगे बढ़ना बन्द कर दो, क्योंकि इसने तुम्हें एक अन्तःप्रकाश दिया था। तुम्हें उसे छोड़ना जानना चाहिये ताकि अगले के लिए तैयारी कर सको।

५. तुम्हें अपना सबसे अच्छा मित्र उसे मानना चाहिये जो तुमसे कहता है कि मैं किसी बुरे या भद्दे कार्य में भाग नहीं लेना चाहता, जो तुममें निम्न प्रलोभनों का सामना करने का साहस बँधाता है, ऐसा व्यक्ति ही सच्चा मित्र है।

६. भगवान् को छोड़ कर अन्यत्र कहीं कोई अवलम्ब मत खोजो। भगवान् को छोड़ कर अन्यत्र कहीं सन्तुष्टि की खोज मत करो।

७. ... जगत् में यह अस्तव्यस्तता हमें यह सिखाती है कि दिन-पर-दिन हमारा जीवन कैसा होना चाहिये, यानी, क्या हो सकता है, क्या होने वाला है इन बातों में हम न फँसे, अपने-आपको प्रतिदिन उसी में लगाये रहें जो हमें करना है।

८. भयानक और हानिकर चीज़ों को बहुत महत्त्व देकर तुम उनकी शक्ति

को बढ़ाते ही हो।

९. हर हालत में यही एकमात्र उचित बात है : जब तुम कोई चीज़ करना चाहते हो, जब तुम कोई चीज़ नहीं कर सकते, जब तुम गति करते हो, जब शरीर गति करने में अशक्त हो जाता है... हर हालत में, हर हालत में, केवल यही—यही केवल : 'परम चेतना' के साथ सचेतन सम्पर्क में आओ, उसके साथ एक हो जाओ और... प्रतीक्षा करो।

१०. चैत्य सत्ता के विकास की आवश्यक शर्तें हैं—एक महान् अभीप्सा में जीना, अन्दर से शान्त रहने के लिए सावधानी बरतना और जहाँ तक बन सके ऐसा ही बने रहना, अपनी सत्ता की सभी क्रियाओं में पूर्ण सच्चाई स्थापित करना।

११. जिस अनुपात में हम अपने-आपको उन्नत करते और पूर्णता की ओर प्रगति करते हैं वैसे-वैसे हमारी परिस्थितियाँ भी सुधरती जाती हैं।

१२. पथ-प्रदर्शक पुस्तकों को तब तक पढ़ने का कोई अर्थ नहीं जब तक तुम उनमें लिखी बातों पर अमल करने का निश्चय न कर लो।

१३. प्रार्थना—हाँ, परन्तु ऐसी प्रार्थना नहीं जो तुरन्त पूरा किये जाने के लिए आग्रह करे। बल्कि ऐसी प्रार्थना जो अपने-आपमें मन और हृदय का भगवान् के साथ सायुज्य हो, जो प्रार्थना में ही सन्तोष और आनन्द का अनुभव करे और विश्वास रखे कि भगवान् अपने समय पर उसे पूरा करेंगे। —श्रीअरविन्द

१४. दुर्बल होने की भावना को भला स्वीकार ही क्यों किया जाये? यही तो बुरी बात है।

१५. दुःखी मत होओ। एक ही लड़ाई को कई बार जीतने की हमेशा आवश्यकता होती है, विशेष रूप से तब जब वह प्रतिकूल शक्तियों के विरुद्ध हो। इसलिए तुम्हें धैर्यरूपी शस्त्र से सज्जित होना चाहिये तथा अन्तिम विजय में विश्वास बनाये रखना चाहिये।

१६. अगर व्यक्ति दृढ़ बना रहे तो पतन का कोई महत्त्व नहीं, वह फिर उठता है और आगे बढ़ता है। अगर वह अपने लक्ष्य की ओर दृढ़ रहे तो भगवान् के मार्ग पर कभी अन्तिम असफलता नहीं हो सकती।

१७. तुम्हारे अन्दर जो ग़लत प्रवृत्तियाँ हैं उन्हें ध्यान से देखना और जानना ज़रूरी है क्योंकि वे ही तुम्हारी कठिनाई का मूल कारण हैं और अगर

तुम स्वतन्त्र होना चाहो तो तुम्हें उन्हें दृढ़ता के साथ त्यागना होगा।

१८. लेकिन हमेशा अपनी त्रुटियों और ग़लत प्रवृत्तियों के बारे में ही न सोचते रहो। तुम जो होने वाले हो, जो तुम्हारा आदर्श है उस पर अधिक ध्यान दो और इस श्रद्धा को बनाये रखो कि चूँकि वह तुम्हारा लक्ष्य है इसलिए वह आयेगा और ज़रूर आयेगा।

१९. कृपा की विजय सुनिश्चित है, शान्त सहिष्णुता इसे जल्दी ले आती है।

२०. अगर तुम भागवत कृपा के साथ एक हो पाओ, अगर उसे हर जगह देख पाओ तो तुम एक आनन्दातिरेक में, सर्वशक्ति में, असीम प्रसन्नता में जीवन बिताना शुरू कर सकोगे। और वह भागवत कार्य के साथ अधिक-से-अधिक सम्भव सहयोग होगा।

२१. तुमसे जिस चीज़ की माँग की जाती है वह है चेतना, वही एकमात्र आवश्यकता है—यानी निरन्तर भगवान् के बारे में सचेतन रहो।

२२. वास्तव में मनुष्य के अन्दर घमण्ड ही वह दरवाज़ा है जिसे विरोधी आक्रमण खटखटाते हैं, क्योंकि वही दरवाज़ा खुल कर उन्हें अन्दर आने देता है।

२३. अनुभव करो, अभीप्सा करो और ऐसे कर्म करो कि तुम नये जगत् को उपलब्ध करने वाली नयी सत्ताओं में होओ।

२४. हमारा उद्देश्य निम्न प्रकृति की कुरूपता से पिण्ड छुड़ाना और आध्यात्मिक सुन्दरता और पूर्णता के जीवन की सृष्टि करना है। जब तक हम कुरूपताओं को स्वीकार करते रहेंगे तब तक यह नहीं हो सकता।

२५. सफलता की इच्छा के स्थान पर प्रगति की लालसा को रखो।
ख्याति के लिए उत्सुकता के स्थान पर पूर्णता की अभीप्सा को रखो।

२६. अपनी मुश्किलों के पीछे लगे रहने से व्यक्ति उन्हें जीत सकता है, उनसे दूर भागने से नहीं। जो उनके पीछे लगा रहता है उसकी जीत निश्चित है। सबसे अधिक सहनशील व्यक्ति को विजय मिलती है। हमेशा अपना अच्छे-से-अच्छा करो और परिणाम भगवान् पर छोड़ दो।

२७. मैं तुमसे कहती हूँ कि उदास और निराश मत होओ; बल्कि ऐसा करो कि तुम्हारी कल्पना सदा आशापूर्ण और उच्चतर सत्य के दबाव के

प्रति सहर्ष नमनशील रहे, जिससे वह सत्य जब आये तो तुम्हें उन रचनाओं से परिपूर्ण पाये जो उसके सर्जनकारी प्रकाश को धारण करने के लिए आवश्यक हैं।

२८. तुम अपने कर्मों से उत्पन्न वातावरण को अपने साथ, अपने चारों ओर, अपने अन्दर लिये चलते हो, और तुम जो कुछ करते हो वह यदि सुन्दर, शुभ और सुसमञ्जस हो तो तुम्हारा वातावरण भी, सुन्दर शुभ और सुसमञ्जस बना रहेगा...।

२९. क्रिया (भौतिक क्रिया) के दृष्टिकोण से सबसे महत्त्वपूर्ण है संकल्प; तुम्हें प्रयास करके एक अटल संकल्प-शक्ति गढ़नी चाहिये। बौद्धिक दृष्टिकोण से तुम्हें प्रयास करके एकाग्रता की एक ऐसी शक्ति का निर्माण करना चाहिये जिसे कोई चीज़ हिला न सके। और अगर तुम्हारे अन्दर दोनों हों, एकाग्रता और संकल्प, तो तुम प्रतिभाशाली होओगे और कोई चीज़ तुम्हारा प्रतिरोध न करेगी।

३०. निष्कर्ष हमेशा एक ही निकलता है : एकमात्र सच्चा मनोभाव है विनम्रता का भाव, मनुष्य जो कुछ नहीं जानता उसके सामने नीरव आदर का भाव और अपने अज्ञान से बाहर निकल आने के लिए एक आन्तरिक अभीप्सा का भाव।

३१. जब तुम्हारे जीवन में कठिनाई आये तो उसे भागवत कृपा के रूप में लो और तब वह सचमुच कृपा बन जायेगी।

'श्रीअरविन्द का पूर्णयोग'

ज्योति का पुण्यधाम

(गतांक से आगे)

मानव के जीवन-समुद्र में आज जो खलबली है, जो हलचल है उससे भी यही प्रमाणित होता है कि युग-परिवर्तन का समय आ गया है। हमलोग जैसे समय में रह रहे हैं ऐसा समय शायद कभी नहीं आया। किन्तु हिंसा-द्वेष के विषैले धुएँ से आकाश आच्छादित हो रहा है, उस तरफ़ किसी नवीन आदर्श, नयी योजना, नयी सृष्टि के लिए मानव मन में, आशा की एक सुनहली रेखा सर्वत्र दिखायी दे रही है। किसी नूतनता के लिए सभी

मानों आकाश की ओर टकटकी लगाये हैं, पथ पर पलकें बिछाये बैठे हैं।

आन्तरिक प्रभुत्व उपलब्ध होने पर ही हम बाहरी प्रभुत्व प्राप्त कर सकते हैं। बाह्य उपायों द्वारा विश्व-शान्ति, विश्व-एकता लाने की हमारी सभी चेष्टाएँ तब तक विफल होती रहेंगी जब तक हम अपनी भूल नहीं पहचानें। मन का स्वभाव ही है अपनी खिचड़ी अलग पकाना। इसलिए श्रीअरविन्द हमें अन्दर से परिवर्तित करना चाहते थे जिससे हम सब आत्मा की विशालता और एकता के सूत्र में बँध सकें तथा मनुष्य-मनुष्य में, समाज-समाज में, देश-देश में सच्ची सद्भावना, मित्रता, स्वाधीनता और समता की स्थापना हो सके। हम भारतीयों का भारतवर्ष, आर्य ऋषियों का आर्यावर्त ही विश्व को यह शिक्षा दे सकता है और समय आने पर देगा भी।

पूर्णयोग द्वारा कैसे मानव, देव-मानव बन सकता है, इस विषय पर वाक्यों से सागर भर कर ही श्रीअरविन्द चुप नहीं बैठ गये, बल्कि उन्होंने जो कहा उसे अपनी प्रयोगशाला में कर दिखाना ही उनके जीवन का व्रत हो उठा। संसार के किसी व्यावहारिक कर्म को त्यागने का उन्होंने उपदेश नहीं दिया। मानव-जीवन के लिए जितने प्रकार के कर्मों की आवश्यकता हो सकती है, उन सबका उनके आश्रम में स्थान है। वहाँ दार्शनिक हैं, वैज्ञानिक हैं, वकील हैं, व्यापारी हैं, शिल्पी और सम्पादक हैं, कवि और कृषक हैं —पर किसी का कोई कार्य उसका अपना नहीं है। सभी कार्य भगवान् के हैं और भगवान् के लिए हैं, सबको यज्ञ-रूप से उन्हें ही अर्पण किया जा रहा है। सबके हाथों से वे ही कर्म कर रहे हैं, सबका उद्देश्य एक है, आत्मा में जीवन प्राप्त करना, अपने-अपने कर्म द्वारा भगवान् को पाना और प्रकट करना। व्यक्तिगत लाभ का किसी के मन में न लोभ है न चेष्टा। वहाँ कोई इसलिए नहीं है कि वह जो चाहे सो करे। बाहरी और आत्मिक दुनिया का ऐसा सुन्दर सामञ्जस्य, जड़-जगत् के ऊपर अमृतत्त्व के ऐसे सुन्दर प्रासाद की प्रतिष्ठा मानव-इतिहास में शायद ही किसी ने देखी हो। सभी एक ही योग की साधना में रत हैं। पर प्रत्येक का उद्देश्य है अपनी-अपनी अन्तर्निहित शक्ति को परिमार्जित और रूपान्तरित कर दिव्य बनाना, अपरा की जगह परा को, अहं की जगह आत्मा के साम्राज्य को प्रस्थापित करना। बाहर से देखने में दुनिया का कर्म-धर्म वही रहेगा, पर अन्दर से हो जायेगा एकदम कायापलट। करना सब कुछ होगा, पर अपने लिए नहीं, भगवान्

के लिए—आत्मभावापन्न होकर। लोगों की जो यह प्रबल धारणा है कि योग के साथ जीवन का कोई मेल नहीं है—यह कितनी निर्मूल है, इसे समय बतायेगा। जीवन को बिना खोये भगवान् को पाना, जगत् को आत्मा की शक्ति के द्वारा निर्मित करना ही है युगद्रष्टा, युग-प्रवर्तक श्रीअरविन्द का *रहस्यम् उत्तमम्।*

यहाँ एक बात ध्यान में रखनी चाहिये कि श्रीअरविन्द यह नहीं कहते हैं कि उस दैवी शक्ति के उतरते ही स्वर्णयुग आ जायेगा, सब मनुष्य देवता बन जायेंगे, मानव-हृदय, जो आज तक प्रेत के नाचघर-सा रहा है, कल वह शिव-मन्दिर बन जायेगा। पर उनका कहना है कि इतनी बड़ी शक्ति का अवतरण इने-गिनों पर होकर समाप्त नहीं हो सकता। इस शक्ति के उतरते ही सर्वसाधारण में एक ऐसी दृष्टि खुल जायेगी कि वे स्वतः असत्य से सत्य की ओर, अन्ध विवशता से प्रकाश की ओर प्रेरित होने लगेंगे और नवयुग का स्वर्ण प्रभात सभी को प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगेगा।

किन्तु उपनिषदों के शब्दों में, जो तप्त-तनु हो सके हैं उन्हीं में सर्वप्रथम उस शक्ति की ज्योति-तरंगिणी का अवतरण होगा और वे ही होंगे पूर्णयोग के अतिमानव, नवयुग के अग्रिम दूत। जहाँ उनमें से एक खड़ा होगा, लाखों की सोयी आत्माओं को जगा देगा, लाखों को भगवान्मय बना देगा। वह ऐसा दीप होगा जो तिमिर का नाश करता है, ऐसा खड्ग होगा जो अज्ञान का विनाश करता है, ऐसा तरुवर होगा जो शीतल और सुखद छाया प्रदान करता है, ऐसा झरना होगा जो मरु से तापित प्राणियों की प्यास बुझाता है, ऐसा पावक होगा जो पवित्र करता और प्रकाश प्रदान करता है।

जो बातें एक के लिए कही जा सकती हैं वही दस-बीस, सौ-पचास के लिए कही जा सकती हैं। ऐसे महामानव से जो समाज बनेगा, वह संन्यासियों की टोली नहीं होगा—वह होगा देवमानवों का समाज, जिसके आगे सर्वसाधारण का मस्तक श्रद्धा और भक्ति से सदा झुका रहेगा। वह समाज कभी किसी को अपना लोहा मानने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। वहाँ अन्ध अहं का नहीं, मधु आत्मा का राज्य है, क्रूर अज्ञान का नहीं, दिव्य ज्ञान का प्रभुत्व और प्रताप है। वहाँ सदा शिव वसन्त का पवन बहता है, कनक-ज्योति की गंगा बहती है, वहाँ की रज से भी श्रद्धा की सुगन्ध आती है। कामना-वासना के भूखे शेर वहाँ घुस नहीं सकते। जहाँ ज्योति-

कलेवर राजहंस का राज्य है, वहाँ काक-कंक का क्या काम?

वह समाज क्या करेगा, उसके विधि-विधान कैसे होंगे, हमारा मन उसकी कल्पना नहीं कर सकता। मन के बनाये हुए कोई बन्धन उसे बाँध नहीं सकते, कोई क़ानून उसकी गतिविधि में रुकावट नहीं डाल सकता। चीज़ों का व्यवहार करते हुए न तो वह अन्धों की तरह टटोलता है और न आगे पग बढ़ाते ठोकर खाता है।

वह ऐसा समाज होगा जहाँ चिन्मय शक्ति का पूर्ण शासन है। वहाँ मानव मानव के, समाज समाज के लक्ष्य में, दृष्टिकोण में, विचारों में संघर्ष पैदा नहीं हो सकता। वहाँ ऐसी नौबत नहीं आ सकती कि एक का ज्ञान और आत्मबल दूसरे के ज्ञान और आत्मबल से मोर्चा लेने पर उतारू हो जाये। जहाँ व्यक्तिगत इच्छा—जो अहं की सन्तान और द्वन्द्वों की जननी है—है ही नहीं, जहाँ सब कुछ सत्य चेतना से परिचालित और नियन्त्रित हो रहा है वहाँ व्यक्तिगत इच्छा की पूर्ति का प्रश्न ही कैसे उठ सकता है? जहाँ दृष्टि एक है, लक्ष्य एक है, साधन एक है, परिचालन करने वाली शक्ति एक है, वहाँ युद्ध कैसा? जो स्थितप्रज्ञ है, जो अजातशत्रु है, जिसका हृदय विश्व-करुणा से भरा है, वह कभी स्वार्थ के युद्ध में उतर सकता है भला? अज्ञानावृत मन से ये बातें समझी नहीं जा सकतीं। जिनकी दृष्टि खुली है वही इनका महत्त्व समझ सकते हैं। जैसे पशु मानव-बुद्धि की थाह नहीं पा सकता, वैसे ही मानव देव-मानव की योगदृष्टि का अनुमान नहीं लगा सकता। संसार से युद्ध का निर्वासन तो तभी हो सकता है जब भगवदिच्छा को यहाँ खुल कर खेलने का अवसर मिले। यह असम्भव तभी सम्भव हो सकता है जब पृथ्वी पर भगवान् के दिव्य कर्मी पैदा हों, देव-समाज का आविर्भाव हो। यही है वह वाणी—हृदयस्पर्शी सन्देश जो श्रीअरविन्द संसार के अद्वितीय ग्रन्थ (The Life Divine) द्वारा दे रहे हैं।

इस प्रकार पूर्णयोग किसी दूर-अतिदूर स्थित देवलोक की ओर अँगुलि-निर्देश नहीं करता। उसका आदर्श है, मनुष्य को मानवी स्तर पर से दैवी स्तर पर उठा लाना और वसुधा को स्वर्गिक सुख-शान्ति का, ज्योति का पुण्यधाम बना देना, जिसका मीठा सपना देश-देश के मनीषिगण युग-युग से देखते आ रहे हैं।

(समाप्त)

—श्री नारायण प्रसाद 'बिन्दु'

"मेरी नन्हीं मुस्कान" के नाम पत्र

('मेरी नन्हीं मुस्कान' के नाम, यह उन पहले बच्चों में से थी जिन्हें आश्रम में प्रवेश मिला था। यह चौदह वर्ष की अवस्था में आयी थी। नन्हीं मुस्कान बहुत वर्षों तक माताजी के कपड़ों पर कशीदाकारी करती रहीं और फिर उनकी व्यक्तिगत सेविकाओं में से एक हो गयीं। उन्होंने सत्रह वर्ष की अवस्था में माताजी को पत्र लिखना शुरू किया था।)

मेरी प्यारी नन्हीं मुस्कान,

तुम्हें धीरज और साहस न खोना चाहिये। सब कुछ ठीक हो जायेगा।

'नीरवता'[१] का फूल काढ़ते समय तुम जिस स्थिति में थीं वह पहले की तरह वापस नहीं आ सकती क्योंकि इस जगत् में चीज़ें ठीक पहले की तरह दोबारा कभी नहीं आया करतीं—हर चीज़ बदलती और प्रगति करती रहती है। लेकिन जिस मानसिक शान्ति की स्थिति का तुमने अनुभव किया है वह उसकी तुलना में कुछ भी नहीं है जिसे तुम आगे जान पाओगी—वह बहुत अधिक गभीर और सम्पूर्ण होगी।

तुम्हें अपनी अभीप्सा को और सभी बाधाओं को जीतने की इच्छा को अक्षुण्ण बनाये रखना चाहिये। तुम्हें भागवत कृपा और निश्चित विजय पर अटल श्रद्धा रखनी चाहिये।

श्रीअरविन्द तुम्हारे रूपान्तर के लिए काम कर रहे हैं—वे जीतेंगे, इस बारे में कोई शंका हो ही कैसे सकती है!

अपने समस्त प्रेम के साथ। १९३१

मेरे कहने का मतलब बस यही था कि तुम उस तरह प्रसन्न और विश्वस्त थीं जैसे कोई बालक या पशु **कारण जाने बिना** होता है। अब तुम्हें कारण जानते हुए और अपनी प्रसन्नता तथा विश्वास का गहरा कारण समझते हुए प्रसन्न और आश्वस्त होना चाहिये।

१९३१

[१] एक नीले रंग का फूल जिसे कृष्ण-चूड़ा कहते हैं। माताजी ने इसका अर्थ बतलाया है, 'नीरवता'।

मेरी नन्हीं मुस्कान,

तुम्हारी मुस्कान सचमुच 'शाश्वत' बन सके इसके लिए, जब तुम मेरे पास हो तो तुम्हें मेरे साथ वैसी ही आज़ादी से बोलना सीखना चाहिये जैसे तुम अपने कमरे में होते हुए बातें करतीं।

साथ ही ज़्यादा अच्छा होगा कि क्रोध न करो। और अगर ग़ुस्सा आ भी जाये तो उसे जल्दी से भूल जाना चाहिये और अगर वह भी सम्भव न हो तो तुम्हें बस मुझसे कह देना चाहिये कि क्या हुआ है ताकि मैं क्रोध को 'नन्हीं मुस्कान' की चेतना से हटा दूँ और उसे वह आनन्द और शान्ति लौटा सकूँ जो मैं चाहती हूँ कि हमेशा उसके होकर रहें।

अपने अधिकतम प्रेममय आशीर्वाद के साथ।

१९३१

मैंने अपनी नन्हीं मुस्कान द्वारा काढ़ी गयी साड़ी देखी और वह मुझे **बहुत सुन्दर** लगी, पूरी तरह सफल।

तुम्हें ऐसे लोगों की आलोचना पर कान न देना चाहिये जिनमें न सुरुचि है न पर्याप्त शिक्षा।

प्रेम सहित।

१९३१

प्यारी माँ,

मैं आपको यह रुपया भेज रही हूँ। मुझे अब जेब-ख़र्च की ज़रूरत नहीं है।[१]

मैं रुपया स्वीकार करती हूँ और अपनी प्यारी नन्हीं बच्ची को, जिस तरह वह अपनी फ़्रेंच परीक्षा में उत्तीर्ण हुई है उसके लिए, अपने आशीर्वाद के साथ बधाई भेजती हूँ।

सप्रेम।

१० मई १९३२

[१] उन दिनों कुछ आश्रमवासियों को एक या दो रुपया महीना जेब-ख़र्च मिला करता था।

मेरी नन्हीं मुस्कान,

मैं बहुत ख़ुश हूँ कि तुमने मुझे पत्र लिखा है; मुझे विश्वास है कि अब तुम्हें ज़्यादा अच्छा लग रहा होगा।

इन सब चीज़ों को बहुत ज़्यादा महत्त्व न दो। ये एक ऐसे बालक की कल्पनाएँ हैं जो जीवन के बारे में, उसके दुःख-दर्द और कुरूपता के बारे में कुछ नहीं जानता। क्योंकि जीवन ऐसा नहीं है जैसा उपन्यासों में चित्रित किया जाता है। दैनन्दिन जीवन छोटे-बड़े कष्टों से भरा है और केवल भागवत चेतना के साथ तादात्म्य साध कर ही सच्चे अपरिवर्तनशील आनन्द को पाया और बनाये रखा जा सकता है।

अपना विश्वास और अपनी श्रद्धा बनाये रखो, मेरी नन्हीं मुस्कान, और सब कुछ ठीक हो जायेगा।

मेरे समस्त प्रेम के साथ।

१ अगस्त १९३२

प्यारी माँ,

हमारी फ़्रेंच-कक्षा में निबन्ध लिखने के लिए यह विषय दिया गया था :

इस विचार पर अधिक प्रकाश डालो :

"भगवान् के प्रति उत्सर्ग ही जीवन का मर्म है, अनन्त के साथ सायुज्य से ही शक्ति का सतत नवीकरण होता है।"

मेरी प्यारी नन्हीं मुस्कान,

तुम देखोगी कि यह बहुत ही सरल है।

१. अनन्त अक्षय शक्तियों का भण्डार है, व्यक्ति एक बैटरी है, एक सञ्चायक सेल जो उपयोग के बाद कमज़ोर पड़ जाता है। उत्सर्ग ऐसा तार है जो व्यक्तिगत बैटरी को शक्तियों के अनन्त भण्डार के साथ जोड़ता है।

या

२. अनन्त वह नदी है जो बिना रुके बहती जाती है। व्यक्ति छोटी-सी तलैया है जो धूप में धीरे-धीरे सूख जाती है। उत्सर्ग वह नहर है जो नदी को तलैया के साथ जोड़ती है और तलैया को सूख जाने से बचाती है।

मेरा ख़याल है कि इन दो रूपकों से तुम समझ जाओगी।
कोमल प्रेम के साथ। २८ अगस्त १९३२

माँ,

मैंने बहुत बार देखा है कि जब मैं कहानियों की कल्पना नहीं करती—जैसा कि उन्हें माना जाता है—तो मुझे एक तरह की सुस्ती का अनुभव होता है, तब मैं काम नहीं कर पाती और अगर करूँ भी तो तेज़ी से नहीं। मेरा आज का पूरा दिन इसी तरह की सुस्ती में बीता क्योंकि अब मैं पहले की तरह कल्पना नहीं कर सकती।

माँ, मैं जानना चाहूँगी कि अपनी सुस्ती के बारे में मैं जो कुछ कह रही हूँ क्या वह सच है—क्या वह कल्पना के अभाव के कारण है?

सुस्ती 'तमस्' से आती है। कल्पना की क्रिया तुम्हारे तमस् को झाड़ देती थी और इस तरह सुस्ती से छुटकारा दिलाती थी। लेकिन इससे छुटकारा पाने का यही एकमात्र उपाय नहीं है। ऊपर से आने वाले प्रकाश और चेतना की ओर खुलना और उन्हें बाहरी चेतना में तमस् के स्थान पर बिठाना ज़्यादा अच्छा और ज्यादा निश्चित तरीक़ा है।

२२ नवम्बर १९३२

प्यारी माँ,

मैं तमस् नहीं चाहती। आज मैं सारा दिन काम करती रही।

लेकिन मेरे मन में तमस् नहीं है। वह सदा सक्रिय होता है और इधर-उधर पागल की तरह दौड़ता फिरता है।

मन हमेशा पागल की तरह दौड़ा करता है। पहला क़दम है कि **अपनी चेतना को** उससे अलग कर लो और उसे अपने-आप दौड़ने दो, **तुम उसके साथ न दौड़ो**। इसमें उसे कम मज़ा आता है और कुछ समय बाद वह पहले की अपेक्षा अधिक स्थिर हो जाता है।

२३ नवम्बर १९३२

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ६७-७१

मानवजाति के आदर्श के लिए कर्म करना

मैं स्वास्थ्य और रोग के बारे में भी कुछ शब्द कहना चाहूँगा। जो लोग बड़ी आयु के हैं, जिनके अन्दर कोई रोग बैठ गया है वे निराशा में कहेंगे, "ओह, हम इस जीवन में कैसे बदल सकते हैं! हम पहले ही दूसरी दिशा में आधे या चौथाई मार्ग तक जा चुके हैं। अब मामला बहुत कठिन है।" माताजी उन्हें भी आशा दिलाती हैं। उनका कहना है कि शरीर में कोई बीमारी हो तो उसका कारण होता है: शरीर में असामञ्जस्य या असंगति। अगर तुम उस रुग्ण भाग को भागवत चेतना के सम्पर्क में ला सको तो सामञ्जस्य फिर से स्थापित हो जायेगा। और मज़ेदार बात यह है कि यह बात क्षण-भर में की जा सकती है। माताजी यह नहीं कहतीं, घण्टों में या दिनों में; जो सामञ्जस्य क्षुब्ध हो गया है वह तुरन्त वापस आ सकता है और रोग तुरन्त दूर हो जायेगा। अगर हमारे अन्दर धैर्य और बुद्धिमत्ता हो, अगर हम रुग्ण अंग को भगवान् के सम्पर्क में लाना जानें तो यह परिणाम ज़रूर आयेगा।

एक और महत्त्वपूर्ण चीज़ है जिसका मैं ज़िक्र करना चाहता हूँ, वह है ब्रह्मचर्य। माताजी और श्रीअरविन्द दोनों ने इस बात पर ज़ोर दिया है कि काम-केलि शरीर के रूपान्तर की सबसे बड़ी बाधाओं में से है। यह वैध होने, न होने का सवाल नहीं है, यदि तुम विधिवत् विवाहित हो, यदि तुमको स्वप्न-दोष होता हो तो वह जहाँ तक शारीरिक रूपान्तर का प्रश्न है, बुरा है। तुमको अपने मन में यह चीज़ स्पष्ट कर लेनी चाहिये। माताजी और श्रीअरविन्द ने बहुत विस्तार से समझाया है कि ध्यान किस तरह किया जाये, काम के अंगों और मामलों पर प्रकाश कैसे डाला जाये ताकि वे काम-सम्बन्धी विचारों, भावों और भावनाओं का प्रत्युत्तर न दें। दमन द्वारा नहीं, चेतना से निष्कासन द्वारा उन्हें दूर करने के लिए माताजी और श्रीअरविन्द की सहायता हमेशा प्राप्त होती है, लेकिन उसे पाने के लिए तुम्हारा मस्तिष्क परिष्कृत और तुम्हें दृढ़-निश्चयी, सबल और सच्चा-निष्कपट होना चाहिये।

उपलब्धि में दो और कठिनाइयाँ आती हैं, एक है नियति के बारे में परम्परागत विचार। जन्म-कुण्डली से पता लगता है कि आदमी का जीवन इतने वर्ष का होगा। माताजी ने कहा है कि अगर तुम अपने-आपको दिव्य विधान के अधीन कर दो तो नियति बदल सकती है। केवल रोग ही नहीं बल्कि नियति और मृत्यु भी बदले जा सकते हैं। उन्होंने इस बारे में बहुत कुछ लिखा है कि मृत्यु के भय को कैसे जीता जा सकता है। एक मज़ेदार तरीक़ा जो उन्होंने बतलाया है वह यह है कि सचेतन रूप से अपने सूक्ष्म शरीर को भौतिक शरीर के बाहर निकालो, जगत् में कार्य करो और फिर वापस आ जाओ। इस तरह तुम सचमुच मरे बिना ही मृत्यु का अनुभव पा लोगे और इससे मृत्यु का भय दूर हो जायेगा। और यह है गुह्य ज्ञान।

मैं तुम्हारे सामने एक दूसरा पक्ष रखना चाहूँगा और वह है गुह्य ज्ञान का। माताजी ने बतलाया है कि हमारा शरीर बहुत-से चक्रों या केन्द्रों से भरा है और हर चक्र किसी-न-किसी शक्ति का प्रतिनिधि है, अगर हर चक्र को अपने मूल का प्रतिनिधित्व करते हुए विकसित होना है तो तुम्हें जानना चाहिये कि वह कौन-सा चक्र है और वह किस शक्ति का प्रतिनिधि है। परम्परा के अनुसार कुण्डलिनी के सात-आठ चक्र माने जाते हैं, लेकिन इन्हीं में अन्त नहीं हो जाता। हमारा शरीर हज़ारों चक्रों से भरा है। गुह्य विद्या या आन्तरिक जगत् का ज्ञान पूर्णयोग का भाग है और माताजी तथा श्रीअरविन्द दोनों ने इस विषय में बहुत कुछ लिखा है।

साधना के बारे में मैं आज दो-एक बातें संक्षेप में कहना चाहूँगा। पहली बात है, चेतना को विस्तृत करना होगा। अगर तुम यह नहीं कर सकते तो तुम दिव्य शरीर में दिव्य जीवन की साधना में प्रगति नहीं कर सकते। जैसे-जैसे तुम प्रगति करोगे तुमको अनुभव होगा कि दिव्य शरीर में तुम्हारी चेतना वैश्व चेतना हो जायेगी, क्योंकि दिव्य चेतना में सभी कार्य स्वतःचालित होते हैं। दूसरी बात यह है कि प्रगति के लिए, आत्मपूर्णता के लिए सच्ची, सतत अभीप्सा होनी चाहिये। इस बात को मन में रखो तो तुम्हारा यहाँ आश्रम में आना सफल होगा। यदि तुम यह दृढ़ निश्चय कर लो "हे भगवन्, अपनी सभी त्रुटियों के साथ, अपनी प्रकृति की, सामूहिक जीवन की, आर्थिक जीवन की, सामाजिक जीवन की, राजनीतिक जीवन की सभी कठिनाइयों के साथ मैं अपने-आपको इस परम रूपान्तर के लिए, 'दिव्य

शरीर में दिव्य जीवन' के लिए अर्पण करता हूँ, अपने-आपको तुम्हारे हाथों में सौंपता हूँ" और मैं तुमको विश्वास दिलाता हूँ कि भगवान् उत्तर देंगे।

और मित्रो, अन्त में, माताजी और श्रीअरविन्द के चरणों में आकर, पूर्णयोग के विकीरण के केन्द्र पॉण्डिचेरी में आकर बड़े दुर्भाग्य की बात होगी कि हम दिव्य शरीर में दिव्य जीवन से कम किसी चीज़ से सन्तुष्ट हो जायें। आइये, हम सब मानवजाति के इस आदर्श के लिए सामुदायिक रूप में काम करें।

माताजी और श्रीअरविन्द के आशीर्वाद आप सबके साथ हों।

(क्रमशः) —नवजात जी

'योग के तत्त्व'

अभीप्सा

आध्यात्मिक अभीप्सा का क्या अर्थ है?

इसका अर्थ है, आध्यात्मिक चीज़ों, आध्यात्मिक अनुभूति, आध्यात्मिक उपलब्धि, अर्थात्, भगवान् के प्रति अभीप्सा।

क्या इच्छा और अभीप्सा एक ही हैं?

नहीं, निश्चय ही नहीं। अभीप्सा भगवान् को पुकारना है,—इच्छा 'प्रकृति' के ऊपर सचेतन शक्ति का दबाव है।

क्या प्रार्थना और अभीप्सा समान हैं?

वह अभीप्सा की अभिव्यक्ति है या हो सकती है। क्योंकि ऐसी प्रार्थनाएँ भी होती हैं जो सिर्फ़ इच्छाओं को अभिव्यक्त करती हैं—जैसे धन, सांसारिक सफलता आदि के लिए की गयी प्रार्थनाएँ।

अभीप्सा और उद्घाटन के बीच क्या फ़र्क है?

इन दोनों का आपस में कोई लेना-देना नहीं है, सिवाय इसके कि अभीप्सा से उद्घाटन होता है। उद्घाटन का मतलब है कि अब तक जो चेतना सोयी पड़ी थी, अब वह सत्य या भगवान् की ओर खुल गयी है, और यह

ग्रहणशीलता की ओर संकेत है। अभीप्सा सत्ता के अन्दर की पुकार है, वह उद्‌घाटन नहीं है।

क्या प्राण से उठती हुई अभीप्सा हृदय से उठती हुई अभीप्सा के जैसी ही होती है?

नहीं, प्राण गतिशील होता है—यह 'प्राण-शक्ति' की पुकार है—जो हृदय से आती है वह भावात्मक या चैत्य होती है।

क्या अभीप्सा की क्षमता अलग-अलग साधकों में उनकी प्रकृति के अनुसार बदलती रहती है?

नहीं, अभीप्सा की क्षमता सभी में एक-सी होती है। वह सिर्फ़ पवित्रता, उत्कटता और उद्देश्य में भिन्न होती है।

क्या कमज़ोर इच्छा-शक्तिवाला व्यक्ति सिर्फ़ अभीप्सा द्वारा साधना में प्रगति कर सकता है?

नहीं, उसे या तो अपनी इच्छा-शक्ति को बढ़ाना चाहिये या यह करने के लिए किसी उच्चतर शक्ति को टेर लगानी चाहिये।

जो व्यक्ति अपनी इच्छा-शक्ति में कमज़ोर है क्या वह अपनी अभीप्सा द्वारा उसे बढ़ा सकता है?

हाँ, वह भागवत इच्छा को वहाँ बुला कर ऐसा कर सकता है।

अभीप्सा कभी-कभी धीमी और कभी-कभी तीव्र क्यों हो जाती है?

यह सबके साथ होता है—प्रकृति हमेशा तीव्र गति से नहीं चल सकती।

अगर प्रकृति हमेशा तीव्र गति से नहीं चल सकती तो हमें अभीप्सा को निरन्तर बनाये रखने के लिए क्यों कहा जाता है?

अगर तुम्हारी अभीप्सा निरन्तर न हो तो प्रकृति अपनी निम्नतर पुरानी रीतियों में जा गिरेगी।

अगर कोई साधक न तो तीव्र अभीप्सा का अनुभव करता है, न ही अपनी प्रकृति की बाधाओं के तीव्र प्रतिरोध का, तो क्या वह अपनी साधना में आगे बढ़ सकता है?

मेरे ख़याल से इसका अर्थ है कि उसकी प्रगति बहुत धीमी होगी।

जब साधक किसी अभीप्सा का अनुभव नहीं करता और न कोई अनुभूति ही पाता है तो उसे अपनी साधना से चिपके रहने के लिए क्या करना चाहिये?

श्रीमाँ का स्मरण करो, नीरव रहो और उन्हें पुकारते रहो।

क्या साधक के लिए आरम्भ से ही अपनी अभीप्सा के बल पर भगवान् को पूरी तरह से अनुभव करना सम्भव है?

अगर उसमें चैत्य की पूर्ण शुद्धि हो और आध्यात्मिक अभीप्सा हो तो ऐसा हो सकता है—लेकिन यह विरल है।

मुझे लगता है कि माँ की 'इच्छा' और 'कृपा' से भी अभीप्सा को बढ़ाया जा सकता है। क्या यह सच नहीं है?

हाँ, लेकिन तब नहीं जब तुम उसके लिए अभीप्सा ही न करो।

आपने मुझे निरन्तर अभीप्सा करने के लिए कहा था। परन्तु मैंने अनुभव किया कि वह माँ की ही 'शक्ति' है जो मेरे अन्दर अभीप्सा की लौ जगाती है, उसे मज़बूत बनाती और बढ़ाती है। तब फिर मेरे व्यक्तिगत प्रयास की भला क्या आवश्यकता है?

यह सच है कि वह माँ की ही शक्ति है जो तुम्हारे अन्दर अभीप्सा को जगाती है, परन्तु अगर वैयक्तिक चेतना उसकी स्वीकृति न दे तो 'शक्ति' काम नहीं करती। अगर वैयक्तिक चेतना लगातार भगवान् को ढूँढ़ती रहे और उनके कार्य को सहमति देती रहे तो अभीप्सा और 'शक्ति' का कार्य भी लगातार होता रहेगा।

परन्तु क्या यह सच नहीं है कि साधक की वैयक्तिक चेतना भी माँ

के द्वारा चलती है और उसके सभी कार्यों का सञ्चालन भी उन्हीं के द्वारा होता है?

परन्तु अगर तुम्हारी वैयक्तिक चेतना ग़लत चीज़ें करे तो क्या इसका मतलब है कि माताजी वे ग़लत चीज़ें कर रही हैं?

परन्तु क्या यह तथ्य नहीं है कि अगर साधक माँ के उच्चतर भागों के कार्यों के प्रति खुला हुआ नहीं है, तब माँ उसके निम्नतर भागों में कार्य करके उससे भूलें करवाती हैं ताकि वह उन भूलों के दुःख-कष्टों से कुछ सीख कर, अपने उच्चतर भागों में श्रीमाँ की ओर मुड़े।

श्रीमाँ लोगों से भूलें नहीं करवातीं; वह 'प्रकृति' है जो उनसे यह करवाती है—अगर 'पुरुष' अपनी सहमति देने से इन्कार न करे। श्रीमाँ यहाँ निम्न 'प्रकृति' नहीं, बल्कि 'दिव्य शक्ति' हैं और यह उनका काम है कि निम्न प्रकृति पर दबाव डाल कर उसे बदलने के लिए बाध्य करें। तुम कह सकते हो कि इस दबाव से 'प्रकृति' लड़खड़ा कर, सही उत्तर देने में असमर्थ होती है और भूलें कर बैठती है। परन्तु ये सभी ग़लत गतिविधियाँ श्रीमाँ तुमसे नहीं करवातीं या तुम्हारे अन्दर ग़लत गतिविधियाँ वे नहीं करतीं—यदि तुम यह सोचते हो तो तुम उन्हें उचित ठहराने और उसे बनाये रखने के लिए एक बहुत बड़ा जोख़िम उठा रहे हो।

परन्तु क्या यह तथ्य नहीं है कि 'प्रकृति' स्वयं भगवान् से आती है? इस अवस्था में क्या वह शक्ति तथा 'दिव्य माँ' का एक अंश नहीं है?

सब कुछ दिव्य माँ से ही आता है; परन्तु निम्न 'प्रकृति' 'अज्ञान' की शक्ति है—इसलिए वह सत्य की शक्ति नहीं है, बल्कि सच्चाई और मिथ्यात्व का मिश्रण है। श्रीमाँ यहाँ 'अज्ञान की शक्ति' को सहारा देने के लिए नहीं हैं बल्कि उस शक्ति के लिए हैं जो 'सत्य' को नीचे उतारने और अज्ञान में से निकल कर उस 'सत्य' तक चढ़ने के लिए अवतरित हुई है।

श्रीमाँ को अपने अन्दर कार्य करने देने के लिए मुझे कौन सा व्यक्तिगत प्रयास करने की आवश्यकता है?

आवश्यकता है अपने-आपको सही चीज़ों—'शान्ति', 'प्रकाश', 'सत्य',

'आनन्द'—की ओर उद्घाटित करने तथा ग़लत चीज़ों, जैसे, ग़ुस्सा, मिथ्यात्व और लोभ को अस्वीकार करने की।

साधक की प्रकृति में वे कौन-सी रुकावटें हैं जो श्रीमाँ के कार्य में पूरी सहमति देने से कतराती हैं?

वे हैं ग़लत गतिविधियाँ—अपनी मनमानी, अहंभाव, प्राणिक उत्तेजनाएँ, घमण्ड, व्यक्तिगत कामना इत्यादि।

क्या यह सच है कि अगर व्यक्ति में सच्ची अभीप्सा हो तो उसके मन के अज्ञानी तथा सीमित होने के बावजूद, भगवान् उसे 'अपने' अवतरण के लिए योग्य पात्र बना लेते हैं?

हाँ, केवल मन छोटा और सीमित न हो—और अपनी संकीर्णता से प्रेम न करता हो।

मन की संकीर्णता से प्रेम करने का क्या तात्पर्य है?

लोग संकीर्ण रहना पसन्द करते हैं; वे उनके अपने सीमित विचारों, भावनाओं, मतों, रुचियों से चिपके रहते हैं और अगर कोई यह कोशिश करे कि वे अधिक व्यापक रूप से सोच सकें तो वे विक्षुब्ध हो उठते हैं, नाराज़ हो जाते हैं और शंका से भर जाते हैं—इसे कहते हैं मन की संकीर्णता से प्रेम करना।

कुछ लोग कहते हैं कि विद्वान् पुरुष, जिसका बहुत विकसित, बुद्धिशाली मन हो, वह साधना में उससे कहीं ज़्यादा तीव्रता से प्रगति करता है जो अनपढ़ और गँवार हो; चाहे दोनों अपनी अभीप्सा की तीव्रता में समान हों।

ऐसा कोई नियम नहीं है। मन मज़बूत और विकसित हो तो ज़्यादा अच्छा है, लेकिन ज़रूरी नहीं है कि पाण्डित्य मज़बूत और विकसित मन की रचना करे।

आप कहते हैं कि पाण्डित्य एक मज़बूत और विकसित मन की रचना

नहीं करता। तो फिर कौन उसकी रचना करता है?

मन उचित और विस्तृत रूप से जानने तथा सत्य को नमनीय रूप से ग्रहण करने की इच्छा द्वारा स्वयं अपनी रचना करता है।

क्या यह ज़रूरी है कि अगर व्यक्ति का मन कमज़ोर और संकीर्ण हो तो 'भागवत कृपा' को पाने के लिए वह अपने मन को मज़बूत और विकसित करने का प्रयास करे या फिर 'कृपा' पर ही यह कार्यभार छोड़ दे कि वह स्वयं अपने अवतरण के लिए तैयारी करे?

यह व्यक्ति पर निर्भर करता है। अगर उसका कमज़ोर या संकीर्ण मन उसकी साधना में आड़े आता हो तो वह उसे विस्तृत करने का प्रयास कर सकता है—अगर उसका हृदय मज़बूत और सच्चा हो या उसकी चैत्य सत्ता सक्रिय हो तो वह योग-मार्ग में उसे भगवान् पर छोड़ सकता है कि वे उसकी सहायता करें।

उचित शिक्षा पाने और मन के सांस्कृतिक विकास के लिए क्या पुस्तकें पढ़ना साधक के लिए अनिवार्य नहीं है?

पुस्तकें पढ़ने से वह यह नहीं कर सकता—चीज़ों को समझने और उन्हें स्पष्ट रूप से देखने से यह विकास होता है। पढ़ना बिलकुल गौण बात है। हज़ारों पुस्तकें पढ़ने के बाद भी तुम संकीर्ण और मूढ़ बने रह सकते हो।

क्या यह सच है कि 'सत्संग' भगवान् के लिए अभीप्सा को उत्पन्न करता और बढ़ाता है?

हाँ।

—श्रीअरविन्द

'देवो भूत्वा देवं यजेत्'

परमेश्वर की आराधना करने से पहले
अपनी चेतना के उच्चतम भाग तक ऊपर उठो,
उस बिन्दु तक उठो
जो तुम्हारी चेतना में उसके साथ समस्वर है।

मिट्टी की देह में

केवल 'देवत्व' को जाग्रत् करने हेतु
उस परम् ने परम का अंश-बीज बोया है।
अपनी रहस्यमयी लीला की संसिद्धि-हेतु
असंख्यों युगों से, मिट्टी की इस देह में
परम का यह जादू-भरा खेल
इसीलिए है खेला जा रहा है।
कि खेल-खेल में सहसा
मानव अनचले मार्गों को खोज ले।
कि खेल-खेल में
अश्रुत वाणियों को सुन सके।
कि खेल-खेल में
अदृश्य दृश्यों को देख ले।
कि खेल-खेल में
अस्पृश्य तत्त्वों का स्पर्श कर ले।
कि खेल-खेल में
अनछुई गहराइयों को छू ले।
जब तक मानव मन के कठोर पूर्वाग्रही विचारों
की तहें टूट न जातीं या
मानव मन के निम्न प्राण की क्षुद्र इच्छाएँ
भस्मीभूत होने ऊपर फूट न आतीं
तब तक कैसे हो सकती है यह सत्ता शान्त और नीरव?
शान्ति तथा नीरवता के पार्श्व में ही तो
छुपा हुआ है दिव्य गन्ध का यह सु'मन'
इसी सु'मन' के उर्वर जागरण-हेतु ही तो
युगों से मानव की अभंग अभीप्सा का
प्रयत्न धरती पर है चल रहा।
जिसके अरुणिम स्वर्णिम प्रकाश में,
उस परम को वह (मानव) है अभिव्यक्त कर रहा।

मानव में भगवान् की अभिव्यक्ति कोई खेल नहीं है।
जो हर क्षण शिशु बन कर परम प्रभु के साथ खेल खेल सकते हैं,
वे ही अपने अन्दर परम प्रभु की अभिव्यक्ति के
खेल में विजयी हो सकते हैं।

—डॉ. सुमन कोचर

दृष्टि की शून्यता

(पिछले ही वर्ष विद्यालय से उत्तीर्ण, शक्ति की रचना—सं.)

एक राजदरबार का दृश्य—

—महाराज की जय हो। महाराज! चित्रकार तनवीर ने आपके लिए अपना बनाया वह चित्र भेजा है जिसके लिए आपने आदेश दिया था।

—प्रस्तुत किया जाये।

(महाराज बिना किसी रंग के, केवल ख़ाली सफ़ेद कागज़ को देख क्रुद्ध हो उठे।)

—हमारे साथ ऐसा मज़ाक? चित्रकार तनवीर को कल दरबार में पेश किया जाये।

—जैसी आपकी आज्ञा, महाराज!

अगले दिन राजसभा में चित्रकार तनवीर ने आकर कहा—

—महाराज की जय हो। महाराज, आपने मुझे बुलाया इसलिए मैं अपने-आपको सौभाग्यशाली समझता हूँ।

—शान्त रहो चित्रकार तनवीर। तुम्हारे मज़ाक के कारण तुम्हें दण्ड दिया जायेगा। हमने तुमसे कहा था कि तुम उस चित्रकारी को हमारे लिए भेजना जिसमें तुमने सबसे अधिक समय व्यतीत किया हो और तुमने हमें ख़ाली काग़ज़ भेज दिया। तुम हमारे राजपरिवार के लम्बे समय तक चित्रकार रहे हो इसलिए हम तुम्हें मृत्यु-दण्ड न देकर कारागार में आजीवन बन्द रहने का आदेश देते हैं।

—महाराज, क्षमा कीजियेगा। मैंने आपके लिए जीवन-भर उन चित्रों को बनाया जिनको आपने देखना चाहा, पर आप आज जिस चित्र की बात कर रहे हैं वह आपका अन्तिम आदेश था जिसमें मैं लम्बे समय से

खोया रहा था।

महाराज, मेरी आपसे एक प्रार्थना है कि आप स्वयं अपने हाथों से मुझे मेरा चित्र वापस लौटा दें।

(चित्र लेते समय जब चित्रकार तनवीर के हाथ हवा में काग़ज़ को ढूँढ़ते, टटोलते हुए महाराज के हाथों तक पहुँचते हैं तो महाराज को अपनी ग़लती का आभास होता है।)

—ओ! चित्रकार तनवीर, नेत्रहीन तुम नहीं हम हैं। हम भूल कैसे गये कि उस दुर्घटना के बाद तुमने अपनी दृष्टि खो दी थी। उसी 'दृष्टि की शून्यता' को तुमने अपने चित्र में उतार दिया।

—शक्ति शर्मा

वे पाँच दिन

(यह है ३५ साल पहले की एक यात्रा का वृत्तान्त जो पहले 'पुरोधा, मई १९८४' में प्रकाशित हुआ था—सं.)

—आई एम देयर
—ओके
—टेक द स्लैक
—टेकिंग इन
—दैट्स मी
—चेक बीले
—क्लाइम्ब वेन यू आर रेडी
—क्लाइम्बिंग
—क्लाइम्ब ऑन

चौंकिये नहीं, यह अंग्रेज़ी का कोई सबक नहीं, पर्वतारोहियों की भाषा का नमूना भर है। नैनीताल पर्वतारोहण प्रशिक्षण-केन्द्र में हमारे सामने कुन्दन सिंह और मनोजकुमार, दो किशोर नवयुवक यह प्रदर्शन कर रहे थे। हमारी टोली के कुछ सदस्य पर्वतारोहण का सात दिन का 'कोर्स' करने वाले थे और वह भी पाँच दिनों में। हमें पाँच दिन पाँच-पाँच छह-छह घण्टे प्रशिक्षण-केन्द्र में बिताने पड़े। नवम्बर का दूसरा हफ़्ता था। नैनीतालवासियों

के लिए उस समय तक ठण्ड पड़नी शुरू भी न हुई थी, लेकिन हम दक्षिण भारत के सैलानियों के लिए तो वह घोर शीतकाल था। ऐसी ठण्ड में, जब खाने के समय भी दस्ताने उतारने की इच्छा न होती थी, पाँच दिनों का वह प्रशिक्षण आसान काम हर्गिज़ न था, इसी कारण वे दिन हम सबके लिए अविस्मरणीय बन गये। उन्हीं दिनों की स्मृतियाँ आज फिर-फिर उमड़ रही हैं। उनमें से कुछ को आज अंकित कर रही हूँ—

नैनीताल वैसे भी दर्शनीय स्थल है। यह पहाड़ों की गोद में सिमटा हुआ दूर-दूर के लोगों को आकर्षित करता है। चाहे नैनी झील में नौका-विहार का आनन्द उठाओ या घुड़सवारी का मज़ा लूटो। या फिर 'टिफ़िन टॉप', 'स्नो व्यू पीक' आदि से दूर हिम किरीट पर्वतों की भव्य सुन्दरता का निश्चल रसपान करो। इसके अतिरिक्त, विशेष रूप से युवकों के लिए यहाँ का पर्वतारोहण प्रशिक्षण-केन्द्र अपना विशेष स्थान रखता है।

हमारी टोली में आबाल-वृद्ध क़रीब ४५ व्यक्ति थे जिनमें से कइयों के मन में यहाँ के सात दिन का 'कोर्स' करने की चाह थी, लेकिन हमारे हाथ में दिन थे कुल पाँच। निश्चय हुआ कि प्रशिक्षण के लिए रोज़ एक, डेढ़ घण्टा अतिरिक्त देकर हम पाँच दिनों में ही 'कोर्स' पूरा कर लेंगे, यानी, दिन में छह-छह घण्टे प्रशिक्षण! कई तो इस प्रस्ताव मात्र से ही बिदक गये, लेकिन हमारे दल की नेता भी अनुभवी थीं। उन्होंने वृद्धों को छोड़ सभी से कम-से-कम एक दिन का, यानी, 'प्राथमिक कोर्स' करने का आग्रह किया। वे अच्छी तरह जानती थीं कि पहले दिन चस्का लग गया तो आज के कई बिदकनेवाले कल अगुआ बन कर आयेंगे।

हमारे सबके लिए यह एक नया अनुभव था। पहले दिन ही जब हमारा अपने प्रशिक्षकों से परिचय कराया गया तो शायद सभी के मन में एक ही प्रश्न था जिसे स्वयं मुख्य प्रशिक्षक रतनसिंह ताड़ गये। उन्होंने हमें एकत्र कर जो भाषण दिया उसमें सबसे पहले हमारे ही प्रश्न को हम पर दाग दिया। कहने लगे, आपलोग यही सोच रहे होंगे कि ये १९-१९, २०-२० साल के छोकरे भला हमें क्या सिखायेंगे, इनके तो शायद हम ही गुरु बन जायें।

सबके चेहरों पर एक खिसियानी हँसी पुत गयी। बात ठीक थी। यहाँ हर एक प्रशिक्षक किशोर था और सब यही सोच रहे थे—ये बच्चे क्या सिखायेंगे!! लेकिन पहले ही दिन हम पर उन्होंने अपनी प्रवीणता और

कौशल का ऐसा सिक्का जमाया कि हम देखते रह गये। पहाड़ों पर उन्हें चढ़ते-उतरते, कूदते-फाँदते देख ऐसा लगता था कि ये हमारी धरती के नहीं, इन्हीं पर्वतशृंखला के जीव हैं।

हमें यह याद रखना चाहिये कि पर्वतारोहण जोखिम-भरा, एक हद तक दुःस्साहसपूर्ण कार्य है। और नौसिखियों के लिए कड़े नियम बनाना नितान्त आवश्यक होता है क्योंकि कभी-कभी वे अपनी झूठी शान या अधिक आत्म-विश्वास के कारण पहाड़ से उतरने की बजाय सीधे रसातल में उतरते हैं। यही कारण था कि हम सबको फौजी सिपाही की भाँति नियम पालन करना था। और जब तक हमारे अन्दर उन किशोरों के प्रति विश्वास या एक तरह के मान का भाव न जगता, हमारे लिए उनकी आज्ञाओं का पालन करना कठिन होता। शायद इसी कारण हमें सबसे पहला पाठ मिला, उन्हें 'सर' कह कर सम्बोधित करने का। इतना ही नहीं, साथ में यह भी कहा गया कि अगर किसी ने जनाब, भाईसाहब या अरे, ओ इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया तो उसे उसी क्षण प्रशिक्षण से एकदम अलग कर दिया जायेगा। इसके अतिरिक्त और भी कितने नियम थे जिनका कड़े रूप से पालन करने की हिदायतें हमलोगों को शुरू से ही मिल गयी थीं।

यह सच है कि मनुष्य जितना कठिन कार्य कर लेता है उसे उतनी ही अधिक ख़ुशी होती है, यही कारण है कि उन दिनों का कठिन प्रशिक्षण हमारी झोली में उपहार-स्वरूप सुखद स्मृतियाँ डाल गया। ठण्डी, कठोर चट्टानों पर चढ़ना-उतरना, शाम की तीखी हवा में दो-दो घण्टे बैठ कर, ठिठुरते-ठिठुरते प्रशिक्षकों के भाषणों को अपनी कॉपियों में उतारना, ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों से कभी रस्सी के सहारे चट्टान पर ९० का कोण बनाते हुए खड़े-खड़े सामने धरती की ओर देखते हुए उतरना तो कभी कमर में रस्सी लपेट इस चट्टान से उस चट्टान तक कूदते-फाँदते नीचे आना, कभी कृत्रिम नदी पार करना तो कभी रस्सी पकड़ कर कंकड़ों की ऊँची-ऊँची ढलानों पर फिसल जाना जिसमें रस्सी के निरन्तर घर्षण से बहुधा दस्तानों के अन्दर भी हाथ जल जाते तो कभी तेज़ी से फिसलते हुए रस्सी ही छूट जाती तो गुलाटियाँ खाते हुए नीचे तक पहुँचते। यह सब उस समय जोखिम-भरे कार्य लगते थे, दूर से जो चट्टानें छोटी-छोटी मालूम होती थीं वे ही पास जाने पर सुरसा के मुँह की तरह विशालकाय बन जाती थीं। कुछ के लिए

तो वे दो दिन के प्रशिक्षण में ही ऐसी हौआ बन बैठीं कि अगले दिन से उन्होंने उस दिशा में मुँह तक न मोड़ा। स्वभावतः बाद में इन लोगों को 'कोर्स' पूरा न करने का बहुत अधिक मलाल रहा। पाँच दिनों में हमने न केवल पर्वतारोहण की प्रारम्भिक चीज़ें सीखीं बल्कि साथ-ही-साथ पग-पग पर उन कुमाऊँनी प्रशिक्षकों की सरलता, निष्कपटता और सहृदयता का भी बहुत सुन्दर परिचय पाया। अनुशासन के होते हुए वे मज़ाक करने से भी न चूकते। भयभीत या हताश हो अगर किसी ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया तो उसमें जोश भरने का भी उनका अपना तरीक़ा था। उस रोज़ जब मुझसे रस्सी के सहारे चट्टान से ९० डिग्री का कोण बनाते हुए सीधे खड़े हो कर यूँ चलने को कहा गया मानों मैं सड़क पर चल रही हूँ तो मेरे प्राण सूख गये। बहुत अधिक ऊँचाई से मुझे वैसे ही डर लगता है। मन किसी तरह साथ देने को तैयार न हुआ। बहुत कोशिशों के बावजूद जब आरम्भ ही न कर पायी तो हार कर कह दिया, "सर, मुझसे नहीं होगा, बहुत डर लग रहा है।" हँसते हुए कहने लगे, "यह कैसे हो सकता है भला, अभी ऊपर आते वक़्त तो उस कोने में तुम्हारे डर के साथ मेरी मुलाकात हुई थी। एक तो उस बिचारे को नीचे ही छोड़ आयी, ऊपर से दोष भी उसी के मत्थे मढ़ रही हो। जाओ, पहले नीचे से उसे उठा लाओ, फिर डर की बात करना।" सच, न मालूम उन शब्दों में कैसा प्रोत्साहन था कि मैं यूँ उतर गयी मानों किसी भूली चीज़ को लेने जा रही हूँ। उसी तरह दल की एक और लड़की को चढ़ने में ज़्यादा भय लगता था। जब कभी वह ज़्यादा देर लगाती तो हमारे सर ऊपर से रस्सी हिला कर कहते—वाह तिवारी, हमारे साथ अगर तुम हिमालय-अभियान के लिए जाओगी तो हमें तो बेमौत मार डालोगी। ख़ुद नीचे खड़ी-खड़ी आस-पास का सुन्दर नज़ारा देखोगी और ऊपर बैठे-बैठे ठण्ड में हमारे जबड़े बजेंगे। इसके बाद तिवारी ऐसे चढ़ कर ऊपर आ जाती मानों घर की सीढ़ियाँ चढ़ कर आयी हो।

चलने के दिन वे 'सर' से फिर कुन्दनसिंह, रतनसिंह वही १९, २० साल के किशोर बन गये। उनका वह स्नेहिल रूप भी भुलाये न भूलेगा।

वे विदाई के क्षण! शब्दों की जगह आँखें बोल रही थीं। कितनी आत्मीयता पनप गयी थी उन पाँच दिनों में—वह कभी भुलायी जा सकती है भला?

—वन्दना

प्रेम ही प्रार्थना

प्रार्थना का संगीत प्रेम की सरगम से सजता है। प्रेम की सजल संवेदनाओं से ही प्रार्थना के स्वर स्फुरित होते हैं। प्रेम के शब्दों को गूँथ कर ही प्रार्थना का काव्य रचा जाता है। भावमय भगवान् भावनाओं की सघन पुकार को सुने बिना नहीं रहते। संवेदनाओं की सजलता ही उन्हें स्पर्श कर पाती है। सजल संवेदनाओं, सघन भावनाओं एवं प्रेम की प्रतीति को जो अपने जीवन में घोल देते हैं, उनका जीवन सहज ही प्रार्थनामय हो जाता है।

—'मधु-सञ्चय' से साभार

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पाँच वर्ष—८६०रु.

अधिष्ठाता : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

नव वर्ष पर प्रार्थनाएं

१९६८

हमेशा युवा बने रहो, पूर्णता प्राप्त करने का प्रयास
कभी बन्द मत करो।

१९६९

कथनी नहीं—करनी।

१९७०

जगत् एक बहुत बड़े परिवर्तन की तैयारी कर रहा है।
क्या तुम सहायता करोगे?

१९७१

धन्य हैं वे लोग जो भविष्य की ओर छलांग मारते हैं।

१९७२

आओ, हम सब श्रीअरविन्द की शताब्दी के योग्य
बनने की कोशिश करें।

१९७३

जब तुम एक ही साथ समस्त संसार के बारे में
सचेतन होते हो तब तुम भगवान् के बारे में
सचेतन हो सकते हो।

2019

January

Su	Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29	30	31		

February

Su	Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28		

March

Su	Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30
31						

April

Su	Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa
	1	2	3	4	5	6
7	8	9	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28	29	30				

May

Su	Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa
			1	2	3	4
5	6	7	8	9	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30	31	

June

Su	Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa
						1
2	3	4	5	6	7	8
9	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	29
30						

July

Su	Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa
	1	2	3	4	5	6
7	8	9	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28	29	30	31			

August

Su	Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa
				1	2	3
4	5	6	7	8	9	10
11	12	13	14	15	16	17
18	19	20	21	22	23	24
25	26	27	28	29	30	31

September

Su	Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa
1	2	3	4	5	6	7
8	9	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30					

October

Su	Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29	30	31		

November

Su	Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30

December

Su	Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa
1	2	3	4	5	6	7
8	9	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30	31				

Registered: PY/47/2018-20
RNI No.18135/70

Date of Publication: 1st January 2019
Rs. 15.00 (Monthly)

A school by The Vatika Group vatika

Nature Friendly

"My child is in Grade 4. My son's journey with this school started 5 years back.

What really drew me to the school at the first instance is the calmness that prevails in the atmosphere!

Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy – class rooms in MatriKiran are the most nature friendly, spacious, well ventilated, they open out to green spaces... perfect to stay in communion with nature."

Dr. Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 4

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2018-19

ICSE Curriculum

MatriKiran
www.matrikiran.in

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 onwards

Junior School
W Block, Sec 49, Sohna Rd, Gurugram
+91 124 4938200, +91 9650690222

Senior School
Sec 83, Vatika India Next, Gurugram
+91 124 4681600, +91 9821786363